# द्यावापृथिवीयम

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# सम्मतयः

मोदमुपगतं नश्चित्तं 'द्यावापृथिवीयम्' विलोक्य। अत्र एकाङ्केषु वैदिकोपाख्यानानां काचिन्नवीनैव समुद्भावना दृगुन्मेषकारिणी। प्रसादमण्डिता गद्यपद्यमयी संरचना सहजतया सहृदयहृदयं हरति।

पाण्डेयमहाभागानां रचनयानया वैदेशिकानां 'संस्कृत नाम काचिन्मृता भाषा' इति परिकल्पना न केवलं निरस्यतेऽपिनु सिद्धान्तोऽयं स्थाप्यते यत्सा 'पुराणी युवतिः' अद्यापि निरवद्यनिर्मितिसौष्ठवं दधाना सचेतसां चित्तं हरन्ती नवनवरसपेशला विविधपदहावभावलास्यमयी प्राणिति, विलसति समुच्छलति च।

श्रीमत्पाण्डेयसदृशरचनाकाराणां सारस्वतीं सिद्धिं कामयते—

डॉ० कामेश्वरनाथ मिश्रः
प्रोफेसर संस्कृत विभाग,
शब्दविद्या–संकाय–प्रमुखः, सी० आई० एच० टी० एस० सारनाथ, वाराणसी

**Dyavaprithiviyam**—a collection of five one-act-plays in Sanskrit is welcome addition to Sanskrit dramatic literature. Themes for all the plays of this collection have been very judiciously culled from the vedic lore pertaining to both, the heaven and the earth, fully justifying the title of the collection. Through these plays the author have given a new lease of life to these narrations of the bygone ages. The author, through various dialogues, conceived for particular occasions, has given vent to many intricate problems of man and woman relationship, status of women in the society, problems of sex and violence so violently rocking the very foundation of Indian social structure, without disturbing the original fabric of the narration.

Briefly, it may be said that, besides the above, lyrical stanzas composed in a lucid language, suiting to the requirement of a dramatic performance, have tremendously enhanced the value of these excellent pieces of literary Composition. From the technical point of view, too, these plays fully withstand the scrutiny of stage performance for all practical purposes.

*Prof. D. D. Sharma*
Sahityacharya. Ph. D. (SKT. & Ling.), D. Litt.
Ex. Prof. Head (Skt.) P. U. Chandigarh

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह पुस्तक भाषा-विभाग, पंजाब की आर्थिक सहायता से प्रकाशित हुई।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# द्यावापृथिवीयम्

डॉ० मथुरादत्त पाण्डेयः

वाराणसी

१९९६

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रन्थ : द्यावापृथिवीयम्

विषय : संस्कृत एकाङ्की नाटक

लेखक और प्रकाशक :

डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय ( अवकाश-प्राप्त प्राचार्य )
एम० ए०, पी-एच्० डी०, शास्त्री, पी० ई० एस० (I)
1292, सैक्टर 15; पंचकूला ( हरियाणा )

संस्करण : प्रथम 1996

© : सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : हिमालय प्रेस, एस० ८/१९५ सुधाकर रोड, खजुरी, वाराणसी

मूल्य : 25/00 रुपये

प्राप्तिस्थान : (I) 1292 सैक्टर 15, पंचकूला, हरियाणा। 134109
(II) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस पो० बा० 1008
k 37/99 गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी 221001

---

# DYAVA-PRITHIVEEYAM

By
Dr. MATHURA DATT PANDEY.
M. A. Ph-D.; Shastri
P. E. S. ( I ) Retd.

Published by
Dr. M. D. Pandey;
1292; Sector, 15, Panchkula Haryana 134109

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# प्राक्कथन

संस्कृत की नाट्य परम्परा को बीसवीं शती में प्रवाहित रखने की दिशा में जो संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रयत्नशील हैं, उनमें डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डॉ० पाण्डेय संस्कृत के अनुरक्त बहुदर्शी विद्वान् हैं और नाट्यविद्या के सक्रिय पोषक हैं। इनकी नाट्यकृतियाँ विषयवैविध्य के साथ-साथ युगोपयोगी प्रयोगकौशल के समायोजन के कारण सर्वथा रङ्गमञ्चोपयोगी तथा जनप्रिय सिद्ध हुई हैं। पाँच एकाङ्क नाटकों का प्रस्तुत संग्रह डॉ० पाण्डेय की नाट्यप्रतिभा का स्तुत्य परिचायक है।

मानव जीवन के सुगम्भीर द्वन्द्व और अपार वैचित्र्य ही वस्तुतः नाट्य का मूलतत्त्व है। प्रबल द्वन्द्व के अभिघात से विक्षुब्ध मानवचित्त की भावनाएँ ही नाट्यकार का उपजीव्य होता है। हमारी परम्परा 'रामायणादि च विभाव्य बृहत्कथां च' आदि निर्देशों से नाट्यवस्तु के स्रोत के रूप में यद्यपि सुविशाल पुराण साहित्य को महत्व देती आई है, फिर भी नाट्यकार अपनी रुचि और विशिष्ट दृष्टि के अनुसार पुराणातिरिक्त स्रोतों से भी कथावस्तु का संग्रह करते आये हैं। वैदिक साहित्य तथा प्रचलित सामाजिक जीवन भी इसी प्रकार नाट्यकृतियों में प्रतिबिम्बित होता गया है।

डॉ० पाण्डेय ने इन एकाङ्कों में वैदिक साहित्य से कथा-संग्रह किया है। प्रधानतः ऋग्वेद के संवादसूक्तों का आश्रय लेकर उन्होंने ऐलोर्वशीयम्, देवो याति भुवनानि पश्यन्, सामयिकी, उत्कोचः तथा प्रसूनं मदीयं, सरोजं त्वदीयम् नाम से पाँच लघु एकाङ्कों की रचना की है। पृष्ठभूमि के वैदिक होने पर भी इन नाटकों के कथानक में जीवन का जो द्वन्द्व मुखर हुआ है उसमें आज का मनुष्य भी अपने को देख सकता है—यही नाट्यकार की कुशलता का प्रमाण है। अतीत वृत्तों में युग की छाया ढूँढकर उसमें मानवीय जीवन के मूल्यों का परीक्षण नितान्त कठिन ही नहीं, अपितु कविप्रतिभासाध्य है। डॉ० पाण्डेय ने यह कठिन परीक्षा अनायास उत्तीर्ण कर हमें जीवन की समस्याओं को विचारने के लिए नई दृष्टि दी है। पुरूरवा-उर्वशी, सरमा-पणि, यम-यमी आदि से संबद्ध कथानक पर्याप्त प्रश्न उपस्थित करता है और ये प्रश्न आज भी प्रासंगिक हैं। इसी प्रासंगिकता को ध्यान में रख कर चिरातीत जीवन के

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकाश में उन प्रश्नों का सदुत्तर नाट्यकार ने सफलतापूर्वक देने का प्रयास किया है। ये संवाद केवल वैदिक होने के कारण ही महत्त्व नहीं रखते, अपितु इनमें जीवन के दुर्ज्ञेय रहस्यों के समाधान निहित हैं—यह भावना इन नाटकों में उजागर हुई है।

डॉ० पाण्डेय की भाषा अत्यन्त प्रशंसनीय है। ऐलोर्वशीयम् पूर्णतया श्लोकबद्ध है और इस दृष्टि से अंग्रेजी साहित्य के 'पोएटिक ड्रामा' का सार्थक उदाहरण प्रस्तुत करता है। पाण्डित्यप्रदर्शन को सर्वथा छोड़कर प्रभावशाली नाट्योचित संलापशैली अनायास पाठक को आकृष्ट करती हुई डॉ० पाण्डेय की वाक्-सिद्धि को प्रमाणित करती है। आधुनिक नाट्यविधि का अनुसरण भी इन एकाङ्कों का अपना वैशिष्ट्य है। हमारा विश्वास है कि विद्वानों के के साथ-साथ संस्कृत रङ्गमञ्च के प्रेमी इन एकाङ्कों का समादर करेंगे।

विश्वनाथ भट्टाचार्य
भूतपूर्व प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# प्रस्तावना

'पल्लव-पञ्चकम्' नामकस्य मद्रचितैकाङ्कसंग्रहस्य द्वितीयं संस्करणं प्रकाश्य, तदधिगतप्रेरणो निगमागमागतान्युपाख्यानान्याश्रित्य पुनरप्येकाङ्कानि रचयितुं प्रारब्धवान् वर्षद्वयपूर्वम्। तान्येव पञ्चसंख्यकान्यस्मिन् 'द्यावापृथिवीयम्' नाम्नि संग्रहे निबद्धानि। एषु चतुर्णां कथास्रोत ऋग्वेदे बृहद्देवताख्ये च वाङ्मये विद्यमानमन्तिमस्य च विष्णुपुराणे। सूर्याच्छायासरण्यूनाम्न्योः पत्न्योः सन्तति-पञ्चकानामुत्पत्तिमुद्दिश्य रचिते 'देवो याति भुवनानि पश्यन्' इत्येकाङ्के कोऽयं सूर्य इति शङ्काध्येतुर्मनस्युद्भवितुमर्हति। समाधीयते कैश्चित्— सूर्यो नाग्नि-पुञ्जः सविता, कस्यचित्तेजस्विनः पुरुषस्याभिधानमस्तीति। मंस्यन्ते चान्ये सूर्यवडवीयमुपाख्यानं सर्वथा प्रतीकात्मकम्। अस्तु नाम सत्यमनिर्णीतमनुद्-घाटितं वा, रूपकरचयित्रा मया तु कलात्मकं सत्यमवलम्ब्य वस्तुसंघटना, कौतूहलसृष्टिः सङ्गतिश्चैव प्रमुखतो द्रष्टव्या विचारणीया वा। एवमेवापरै-काङ्कानां विषयेऽपि मत्प्रयासः परीक्षणीयः।

एकाङ्कागतानां केषाञ्चित्पात्राणां वस्तुगतिप्रदा वाग्व्यवहाराः समाज-सापेक्षाचारदृष्ट्यालोच्या अपि न मया व्यक्ता निगमागमाद्याधारग्रन्थेषु तत्तद्दर्शनात्। कथं परिवर्तनीयो मया यमं प्रति ऋग्वेदवर्णितो यमीकृतप्रणय-प्रस्तावः? कथञ्जापहार्या विष्णुपुराणवर्णिता राजकुमारी-परिचायिका महा-राजज्यामघोक्तिः। वन्ध्यापतिः स पाणिग्रहणमनसा तां वंशवृद्ध्यै गृहमानीत-वान्; किञ्च राजमहिष्या पृष्टो भीतः स 'तव जनिष्यमाणपुत्रस्य भार्येयमिति' वदित्वा तस्याः कोपमपाहरत्। कलाकारशक्तिसाध्यं परिवर्तनं परिवर्धनं वा कृत्वा मयैतादृशानां वृत्तानामरुन्तुदता खलु खर्वीकृतेति सहृदयजनेनानुभूयिष्यते स्वयमेव पठित्वा दृष्ट्वा वैकाङ्कानि। 'देवोयाति भुवनानि पश्यन्नित्याख्ये रूपके स्वल्पपरिवर्तनानन्तरं वडवाश्विनी सूर्य-शुक्रं घ्रात्वैव कुमारद्वयं न जन-यति, अपि तु नासारन्ध्रेण शुक्रं गर्भाशयं प्रापय्य नियतकाल एव जनयति। एवमप्राकृतस्थितयो यथासम्भवं संशोध्य प्राकृताभासतां नीताः।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रङ्गमञ्चस्य विषयेऽपि किञ्चिद्वक्तव्यमेव। सङ्गृहीतानि सर्वाण्यप्येकाङ्कान्यभिनेयानि। नैकमपि दृश्यं दर्शयितुमशक्यं प्रविधि-प्रोन्नते रङ्गमञ्चेऽधुना। पुस्तनिर्मिता अश्वा अपि रङ्गमञ्चे चालयितुं शक्यन्ते। स्थाने स्थाने रङ्गमञ्चीया निर्देशा मया दत्ता एव, तथापि निर्देशकाः समष्टिरूपेण नाटकीय प्रभावमुन्नेतुं यथेच्छं परिवर्तनं कर्तुमर्हन्ति। दूरदर्शनप्रदर्शने तु सर्वमन्यथाऽशक्यमपि दर्शयितुं शक्यते। सत्याभासमये रङ्गमञ्च एव दृश्य-चित्रणं कष्टसाध्यम्, संकेतात्मकेऽत्याधुनिक-रङ्गमञ्चे तु सर्वं सुकरमिति स्वर्गादिसृष्टिरपि सुनियोज्या।

वाक्पतिरपि रचनाया उच्चावचभूमौ क्वचित्स्खलत्येव, किं पुनः कुण्ठितमतिर्मादृशः कलाकारमानी। सज्जना अवश्यंभावीनि मत्स्खलनानि संसूचनया समादधति चेदचिरादेवापरैकाङ्कपञ्चकविरचनेन मातरं सरस्वतीं सेविष्य इति संकल्पेन विरमामि।

मथुरादत्त पाण्डेयः

# अनुक्रम


| क्रमाङ्क | विषय | | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|---|
| १. | प्राक्कथन, प्रस्तावना | .... | V–VIII |
| २. | ऐलोर्वशीयम् | .... | १–१८ |
| ३. | देवो याति भुवनानि पश्यन् | .... | २०–३२ |
| ४. | सामयिकी | .... | ३३–४१ |
| ५. | उत्कोचः | .... | ४३–५१ |
| ६. | प्रसूनं मदीयं सरोजं त्वदीयम् | .... | ५३–७२ |
| ७. | शब्द-कोश ( Glossary ) | .... | ७३–०० |
| ८. | परिशिष्ट ( कथासार ) | .... | ७४–७८ |
| ९. | शुद्धि-पत्र | .... | ७९–८० |


CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# ऐलोर्वशीयम्

स्थानम्—अमरावती ।

[ देवसभायां देवराज इन्द्रो भूलोकादागतो महाराज ऐलश्च (पुरूरवाः) सुखासीनौ नृत्यन्त्योऽप्सरसश्च दृश्यन्ते । नन्दनोपवनजातपारिजातादिकुसुमोद्भूतसौरभेणान्दोलितं नभ आमोदकरं प्रतीयते । ऐलः सतृष्णाभ्यां नेत्राभ्यामुर्वशीं पश्यन्नास्ते । सा च पार्थिवसुषमाकृष्टा भूपं दरीदृश्यते । नृत्यावसानेऽप्सरसो निष्क्रामन्ति ]

इन्द्रः — स्वागतं दिशतेऽमरलोकः ।

लभ्यन्ते भौतिका न भोगाः स्वर्गे तथा यथा हि धरित्र्याम् ।
गन्धोऽवनेर्गुणः प्राप्योऽत्र तेनैवासौ भाति विशोकः ॥
ज्योतिरदाहकममृतं पेयं पारिजातपुष्पाणि समीरम् ।
अपार्थिवा अप्सरसः सरसाः स्वर्गस्ते सर्वो निर्मोकः ॥
प्रतिष्ठानपुरपते मित्रवर ! हत्वा जित्वा समरे शत्रून् ।
जितं त्वयाद्धा चेतोऽस्माकं ब्रूहि वाञ्छितं पुण्यश्लोक !

ऐलः — मघवन् ! चेत् प्रहृष्टोऽसि देह्यप्सरसमुर्वशीम् ।
दृष्ट्वा यां मोहितं चित्तं दूयतेऽस्या अदर्शनात् ॥

इन्द्रः — न मिथ्या वचनं मे स्यात्किञ्चिदन्यद्धि याच्यताम् ।
सुषमा देवलोकस्य कथं देयोर्वशी मया ! ।
उर्वशी नास्ति सम्पत्तिर्मम वैयक्तिकी नृप ।
समस्त-देवलोकस्य प्राणास्तस्मिन् समाहिताः ॥

ऐलः — प्रतिष्ठानपुरं नाहं गमिष्याम्युर्वशीं विना ।
शवो मे प्रेष्यतां प्राणांस्त्यक्ष्याम्यत्रैव ते पुरः ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रः मा मा त्याक्षीरसून् राजन् ! उर्वशीं ते ददाम्यहम् ।
यदि सा नानुमन्येत तर्हि किं करवाण्यहम् ॥
दीयते स्त्री न कस्मैचित् न च साप्यवरुद्धयते ।
अनधीना स्वयंसाध्या मतिस्तस्या गरीयसी ॥

[आदेशपालम्] पारिजातस्यशाखासु कूजन्तीवोज्ज्वला पिकी ।
उर्वशी प्रापणीयात्र भूपतिस्तां दिदृक्षति ॥

[आदेशपालो यथाज्ञापयति देव इत्युक्त्वा निष्क्रामति]

[अत्र जैकलवित्रसदृशे रङ्गमञ्चैकभागे सखीभिः सहोर्वशी नृत्यगानपरा दृश्यते । अपर-भागो जवनिकापतनाददृश्यो भवति। जवनिकामात्रपातोत्थानाभ्यां सामान्यरङ्गमञ्चेऽपि दृश्यमेतद्दर्शयितुं शक्यते । चतसृषु सखीषु द्वे निष्क्रान्ते]

उर्वशी [गानम्] उरसि वसति मे कोऽयम् ?
नयनपथादुत्प्लुत्य निमज्जन्
उद्वेलयति मनोऽयम् ।

सख्यौ भूसौन्दर्यं स्वर्लोभयितुम्
(सुजूर्णिः श्रेणिश्च) समागतं सुरबाला दयितुम्
वृतं स्वर्ग-सुषमयातिधन्यम्
धन्योऽमरलोकोऽयम् ॥

उर्वशी उरसि वसति मे कोऽयम् ?

सख्यौ उरसि वसति ते सोऽयम् ।
अमुञ्चतां यौ शरौ पुरस्ताद्
विद्धौ विकलावुभावकस्मात्
पराजयः स्वाद्यते विजयवत्
प्रियतापरिपाकोऽयम् ॥

उर्वशी उरसि वसति मे कोऽयम् ?

सख्यौ उरसि वसति ते सोऽयम् ।
भूतासक्ता दैवी सत्ता
भौतिकतातीन्द्रियानुरक्ता ।
स्वप्नयथार्थाविष्टो द्वन्द्वो
दिवस्पृथिव्योः सोऽयम् ।

उर्वशी उरसि वसति मे कोऽयम् ?

सख्यौ उरसि वसति ते सोऽयम् ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदेशपालः [ सम्प्राप्तोऽभिलक्ष्योर्वंशीम् ]

नरेशेन सुखासीनो देवेशस्त्वां दिदृक्षति
एकाकिनी यथाशीघ्रं गन्तुमर्हसि सुव्रते !

[ परावर्तते ]

उर्वशी [सापह्नवम्]

आहूतास्म्यधुना शीघ्रमधुनैवाऽऽगता ततः ।
गन्तव्यं वा न वा तत्र मनो दोलायते मम ॥

सखी ( श्रेणिः ) [ साक्षिनिकोचम् ]

गन्तव्यं न त्वया तत्र राजर्षिस्त्वां तु नेष्यति ।
राक्षसान्मोचितामेष भुजाभ्यां बाधयिष्यति ॥
निवेदयाव आवां हि तत्र गत्वा सुरेश्वरम् ।
आहूता नोर्वंशी स्थातुं समर्था प्रणयाहवे ॥

उर्वशी [ गोप्तुमसमर्था ]

आहूतास्मि सुरेन्द्रेण मया गन्तव्यमेव तत् ।
दिदृक्षन्तं च राजर्षिं पिपृच्छिषति वां सखी ॥

उर्वशी [ स्वां विधृतां मन्यमाना ]

सूत्रं यथा मणिप्रोतं सख्यौ ! स्वायत्तमानसे !
मह्यं राजर्षिसम्बन्धादुपहासोऽपि रोचते ।
ऐलं निरीक्ष्यात्र समागतेयं नैवोर्वशी सा, भ्रम एव तस्याः ।
उपस्थितिं ह्यप्सरसां ब्रवीति मनःस्थितिर्नैव शरीरयोगः ॥
अपि क्रुद्धोऽस्ति देवेशो भूपः स्निह्यति किं मयि ?
प्रणयासक्तचित्तां मामाशङ्का बाधते भृशम् ॥

सखी (सुजूर्णिः)

दिने द्विरेफाविव लोचने ययोर्
विहाय कुन्दाप्सरसः सरोजिनीम् ।
असेवतां त्वामवधीरणाभये
नृपान्न शङ्क्ये न च नाकनायकात् ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उर्वशी वचो न भूयाद्युवयोर्मृषाप्यदो
बिभेमि भौमात्प्रणयादसंस्कृतात् ।
प्रपातपार्श्वस्थित-पल्लवं यथा
विकम्पते मे हृदयं मुहुर्मुहुः ॥

सखी (सुजूर्णिः) अग्नितुल्येन भूपेन सम्भोग-सुखमाप्नुहि
दर्शनेनैव सन्तुष्टैः क्लीबैर्देवैर्वसाथवा ॥

उर्वशी दिव्येनापि च किन्तेन प्रेम्णा वा कामगन्धिना !
अग्निस्पर्शं विना स्वर्गे का कान्ता तुष्टिमाप्स्यति ?
दिव्या देवा विदेहाश्च पुण्यश्रवणदर्शनाः
सन्तु नाम महान्तस्ते कदर्याः कामिनीकृते ॥

सखी (श्रेणिः) गन्तुमिच्छसि स्वस्त्यक्त्वा भोगान् भोक्तुं महीतलम् ।
ज्ञातव्यञ्च त्वया तत्र कीटाः पुष्पेषु शेरते ॥
पक्षास्त्रितलिकाणान्तुच्छिद्यन्ते पुष्पकण्टकैः
असूर्यम्पश्ययाऽलङ्घ्या देहली राजभार्यया ॥
अपि जानासि भूलोके सूते नारी शिशूनपि
पयः प्रस्रवणात्क्लिन्ना जायतेऽस्याश्च चोलिका ?
लम्बिष्येते दृढोरोजौ बिल्वाकारौ समुत्थितौ
दिवं स्प्रक्ष्यत्यधो-नाभिः सन्ततौ रूपहारिणी ॥
धिङ्मातृत्वं महत्कष्टमङ्गना-जीवनं भुवि ॥

सखी (सुजूर्णिः) मा मैवं त्वमवज्ञासीर्मातृत्वं भुवि योषितः
जननी विश्ववन्द्या हि देव्या अपि गरीयसी ।
प्रमादात्प्रमदा सोत्री प्रसादमधिगच्छति
शोभतेऽङ्के शिशुं धृत्वा शशाङ्कमिव शर्वरी
बीज-देहस्य शैथिल्यं पादपे पल्लवायते
लावण्यं जननी-गर्भे पुनर्नूत्नायते चिरम् ॥
नारी नदीव पुष्णाति जगद् भूत्वा पयस्विनी ।
पराजयो न मन्तव्यो नारीणां प्रसवो जयः ॥

सखी [श्रेणिः) मेदिन्याः सुखदुःखानि त्वावाभ्यां दर्शितानि ते
हितं निजं विचार्यैव यथेच्छसि तथा कुरु ॥
स्पृहयसे मनुष्याय मनोवाक्कर्मभिर्यतः
मित्रावरुणशापेन गमिष्यस्येव भूतलम् ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सखी (सुजूर्णिः) राजा चेद्याचते सुभ्रु त्वया चाप्यनुमोद्यते ।
मन्येऽहं त्वां गतामेव शक्रस्त्वां नैव रोत्स्यति ॥
अहर्निशं स्मरिष्यावो निवसन्तीं तु प्रेयसा
स्मृता त्वयाऽऽगमिष्यावो मनोगत्या त्वदन्तिकम् ॥

सख्यौ (साश्रुनयने) गच्छ शीघ्रं यथादिष्टा दर्शनाय पुनः पुनः ।
शिवास्ते सन्तु पन्थानो योगक्षेमेण संवृताः ॥

[अपरभागे वार्तापरावैलेन्द्रौ दृश्येते]

उर्वशी [प्रविश्य साभिनयं नमस्कृत्य वादेशाय प्रतीक्षते]

इन्द्रः उर्वशि ! मन्यसे चेत्त्वं मेदिनीपतिना सह
प्रतिष्ठानपुरं गच्छ स्वर्गं स्रष्टुं यथारुचि ॥

उर्वशी आज्ञैषा देवदेवस्य पालनीयाऽविचारतः
उताहो गमनात्पूर्वं श्रोतव्यं मे निवेदनम् ?

इन्द्रः आदेशो नैव कस्यापि प्रेम्णः क्षेत्रे प्रवर्तते ।
ऐलाय दीयते स्वर्गो नानिच्छन्ती प्रियोर्वशी ॥
इच्छा चेन्न ममापत्तिर्विलोमे नैव चाग्रहः ।
अभीप्सितश्च निःशङ्कं ब्रूहि सुन्दरि ! सत्वरम् ॥

उर्वशी यस्या वासः प्रवासो वा समानो यत्र गृह्यते ।
आसक्तिरहिते स्थाने रमेत रमणी कथम् !
अतएव गमिष्यामि राज्ञा सह महीतलम् ।
मह्यं वरत्रयं दातुं यद्यसावनुमन्यते ॥

इन्द्रः उर्वशि ! वासनासि त्वं तृप्त्यै भौतिकविग्रहम् ।
इच्छसीति नरेन्द्रेण गच्छ, नाक्षिप देवताः ॥

ऐलः हृष्टोऽहं त्वद्वशप्राणो विज्ञाय हृदयं तव
वरान् वृणीष्व चेतो मे स्वीकर्तुमाकुलायते ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ ऐल उर्वशी च गायतः। इन्द्रोऽपि यथासमयं तावनुकरोति ]

उर्वशी प्रियतम ! प्रथमो मे वर एषः
पास्याम्यहं सकृत् प्रतिदिवसं घृतमात्रं भूपेश !

ऐलः दत्तः प्रथमस्ते वर एषः।
आज्याढ्यो मे देशः॥
प्रेयसि ! कीदृक् ते वर एषः ?

इन्द्रः आयुर्हर आदेशः.....राजन् !

उर्वशी प्रियतम ! वरो द्वितीयोऽप्येषः॥
प्रीतिकरो मे वरो द्वितीयो दातव्यो भुवनेश !
द्वयोः पार्श्वयोः शय्यायाः स्यादेकश्चैको मेषः॥

ऐलः मेषा बहवो राज्ये, दत्तो—
वरो द्वितीयोऽप्येषः॥
प्रेयसि ! कीदृक् ते वर एषः ?

इन्द्रः कामविमूढो मेषः....मह्यां।

उर्वशी प्रियतम ! वरस्तृतीयश्चैषः॥
विहाय शय्यामङ्गं नग्नं द्रष्टव्यं न नरेश !
संयोगो नौ भग्ने सन्धौ भविता कथावशेषः।

ऐलः विक्षिप्तोऽटति नग्नो दत्तो वरस्तृतीयश्चैषः॥
प्रेयसि ! कीदृक् ते वर एषः।

इन्द्रः नश्यति कामोऽशेषः...ज्ञानात्....।

उर्वशी प्रियतम ! वरो न कश्चिच्छेषः॥

उर्वशी [इन्द्रं प्रति] आज्ञयानुगृहीतव्या गन्तुं प्राप्तवरा भुवम्
क्वात्र वासांसि लप्स्येऽहमपेक्ष्याणि नरालये।

इन्द्रः चिन्तयालं प्रविष्टायां भूकक्षां त्वयि शोभने !
देवप्रभावादचिरात् प्राप्स्यतेऽखिलवैभवम्
शिवा वां सन्तु पन्थानो भूयास्तं सुखिनावुभौ
भाग्याभाग्ये गते अस्तमुर्वश्या सह स्वर्भुवोः

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पट-परिवर्तनम्)

स्थानम्—प्रतिष्ठानपुरवीथी

[ उद्घोषकः सडिण्डिमः संसूचयति ]

नागरिका ! दत्तकर्णाः श्रूयतां श्रूयतां वचः ।
महाराजाधिराजस्यास्त्यादेशोऽयं भवत्कृते ॥
कोष्ठागारे राजकीये शुद्धं निक्षिप्य गोघृतम् ।
यथेप्सितं राजकोषात् प्राप्तव्यं पुष्कलं धनम् ॥
अन्यच्च श्रूयतां भो भो अत्रत्या मेष-चारकाः !

मेषयुग्मं समानेयं मांसलं बलवत्तरम् ॥
नवागता महाराज्ञी घृतं पीत्वैव जीवति ।
मेषद्वयं पालयितुं हर्म्ये कामयते भृशम् ॥

[ उद्घोषको डिण्डिमं ताडयन् मञ्चपार्श्वतो निस्सरति ]

एको नागरिकः घृतं पीत्वैव जीवतीति सरहस्यं प्रतीयते ।
किमर्थं मेष-मिथुनं प्रासादे परिपाल्यते ॥

अपरः शुष्करोगेन ग्रस्ता स्यात्पीत्वाज्यं सोऽपहार्यते ।
सा स्याद् गड्डरिकापुत्री परिवेशं समीहते ॥

यष्टिहस्तः कश्चिद्वृद्धः
श्रुतो मया समुद्घोषः श्रुतं च भवतो मतम् ।
प्रतीयते प्रतीकत्वं मेषसङ्गाज्य-पानयोः ॥
घृतमायुरिति ख्यातं संभोगात्तच्च नश्यति ।
उर्वश्या आज्यपानेन तथ्यमेतदुदीर्यते ॥

मेषयूथो यथा गर्ते पतत्याद्यमनुव्रजन् ।
तथैव दम्पती मूढावाप्नुतो वासनासुखम् ॥

अन्यो नागरिकः व्यक्तेरेव क्षरत्यायुः संभोगादिति मन्यते ।
प्रजोत्पादनहेतुत्वात् कुलस्यायुर्विवर्धते ।
यथा भवति यो लोके तथैवान्यत्र पश्यति ।
स्थविरत्वं गतः कस्मादादर्शे तरुणो भवेत् ! ॥

अपरः प्रौढो नागरिकः—

आत्मनः प्रतिबिम्बोऽसौ लोक इत्यभिधीयते ।
न चास्य तात्त्विकी सत्ता द्रष्टैव प्रतिभासते ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उर्वशी कामुकी योषित् पीत्वाज्यं बलमर्जति ।
सम्भोग-निरतौ मेषौ दृष्ट्वा लोलुभ्यते रतिम् ।।
अपि दृष्टो महाराजः प्रवृत्तो राजकर्मणि
उर्वशी यद्दिनादत्र भूपेशेन समागता ?

## पट-परिवर्तनम्

### स्थानम्—प्रतिष्ठानपुरम्

[ महाराज ऐल आसन्द्यामुर्वश्या सह सुखासीनो दृश्यते । दम्पत्योरतृप्तिः पुनरपि रतिलोलुपतां जनयन्तीव प्रतीयते ]

ऐलः प्रिये ! ब्रूहि सत्यं धरा रोचते ते सुराणां सभायां मुधा नर्तनं वा ।
भुवो गन्धवाहोऽत्र कल्पागतो वा सुरापानमत्राथवा सोमपानम् ।।

उर्वशी न लोकः प्रियो वाप्रियः कश्चिदेव वसेद्यत्र प्रेमास्पदोऽसौ सुरम्यः ।
व्रजेन्नाकमस्मत्प्रियश्चेदिदानीं धरा स्यात्तदानीं तु कारासमा मे ।।

ऐलः भवत्या कथं याचितोऽस्मद् वरोऽसौ जहासीति भग्ने च सन्धौ भुवं त्वम् ।
परं शक्यते नैव रागाद्विरङ्क्तुं मिलित्वा जलेनेव दुग्धस्वरूपात् ।।

उर्वशी श्रुतं सखिभ्यः प्रणयः प्रबुद्धोऽनुरागिणौ शाययति प्रभाते ।
स्वप्ने समारुह्य सुखस्य मेरुं नैराश्यगर्ते पततो विनिद्रौ ।।
कालान्तरे प्रेमिजनस्य चित्तं सामान्यलोके परिवर्ततेऽद्धा ।
द्विरेफवृत्तेर्वसुधाधिपस्य तथा त्रितल्यप्सरसः कथा का ।।

ऐलः निर्भरं निर्दयासि त्वं कथमित्थं प्रकल्पसे ?
जीवतोरावयोः सत्यं त्यक्तुं त्वां नोत्सहे क्षणम् ।।
जातोऽहन्ते ह्यभिन्नाङ्गः किं मे राज्येन साम्प्रतम् ।
कामये त्वन्मुखाम्भोजं पश्यतो यातु मे जनिः ।।

उर्वशी नाहं मंस्ये स्वसौभाग्यं दृष्ट्वा त्वां मत्परं, परम् ।
अकर्मण्यं दयापात्रं प्रेमानर्हं घृणास्पदम् ।।
युष्माकं भवने तावत् स्थातुं शक्नोमि भूपते !
यावद्दीव्यति भूलोके भवद्विक्रमभास्करः ।।
तस्मिन्नस्तंगते राज्यं नाशमेष्यति निश्चितम् ।।
माञ्चापि त्वत्प्रियां पश्चात् कश्चिद्दैत्यो हरिष्यति ।।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐलः कालं जेतुमहं शक्तो यदि त्वां हर्तुमीहते।
कोऽन्यः शक्नोति नेतुं त्वां विरक्तिः कस्य जीवने ?

उर्वशी आसायं दिवसारम्भादारमेत्प्रययाः यदि।
व्याकुलाननुरक्ता सा सम्बन्धांश्छेत्स्यति ध्रुवम्॥
पश्याम्यहं गवाक्षाद्धि भवद्राज्याधिकारिणः।
आदेशार्थं समासीना निवर्तन्तेऽकृत-क्रियाः॥
शङ्किताहं जनेषु त्वं कामान्ध इति ज्ञायसे।
क्व वाऽस्य कुत्सितो भावः क्व प्रशस्योऽथ "रागिणः"॥

[ऐलः कक्षाद् बहिर्निष्क्रम्य सभागृहं जिगमिषामीति प्रतिहारिणं संसूच्य शृङ्गारकक्षं प्रविशति। उर्वशी सापराधेव प्रतीयते! तस्या ग्लानिं परिहरन्नैलस्तत्कपोलोपरि करस्पर्शं करोति, निष्क्रामति च। नेपथ्ये श्रूयते]

सुरेन्द्रादृतसौहार्दा नरेन्दादृतशासनाः।
प्रतिष्ठान-पुराधीशाः सभाकक्षं समागताः॥

## पटपरिवर्तनम्

## स्थानम्—स्वर्गस्थं नन्दनकाननम्

[अप्सरसो वार्तामग्ना दृश्यन्ते]

सुजूर्णिः उर्वश्या विस्मृतः स्वर्गः किमुपेक्ष्यामरावती ?
तया वा निर्मितश्चामौ धरायामेव नूतनः॥
नोर्वशी यत्र किंस्वर्गः किरात्रिश्चन्द्रिकां विना।
किंवसन्तः पिकीहीनो ग्रीष्मशुष्का च किंनदी॥

श्रेणिः भूत्वा भग्नास्त्र इन्द्रोऽपि योद्धेव समरे स्थितः।
भजते तां विना खिन्नः किं-कर्तव्य-विमूढताम्॥

सुजूर्णिः खिन्नता देव-राजस्य युज्यते सर्वथा शुभे!
विनोर्वशीं निरातङ्कः शेते स्वर्गे न सोऽधुना॥
प्रेष्यते काचिदस्मासु तपोभङ्गाय भूभुजाम्।
विनान्यसाधनैः सिद्धिः कथञ्चिन्नैव लभ्यते॥
सन्तु स्थाने प्रयत्ना नः स्वामी सिद्धिमपेक्षते।
उर्वश्यास्तु प्रभावोऽतः शक्रेऽक्षुण्णो विलोक्यते॥
जटिलं साधुमेकं तं विविधैः कामचेष्टितैः।
मोहितुं नैव शक्तेति ग्लानिग्रस्तास्मि कीदृशी!

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हृदेचक्षुः　　अधुना श्रुतमिन्द्रेण गन्धर्वौ द्वौ नियोजितौ
उर्वश्या मेषकौ हर्तुं तां पुनः प्राप्तुमिच्छता ॥
श्रूयत एतदप्यद्य संवर्तकवलाहकौ
आदिष्टौ त्रिदशेशेन मेघौ देवयितुं तडित् ॥
[दूरवीक्षणाकारं यन्त्रमुपधार्य]
दिव्यदृष्ट्या प्रपश्यामि प्रासादे सुप्तदम्पती
अहो ! कथं भ्रमन्त्यौ द्वे छाये तमसि वेश्मनि ?
आरब्धमेव षड्यन्त्रं तत्र देवैस्तदर्थकम् !

सुम्नआपिः　　अवधानेन संप्रेक्ष्य ब्रूहयग्रे यद्धि जायते ।

[ छायाभिनयेन मेष-हरणं प्रदर्शनीयम् । अश्लीलता-परिहारायोपरितः महाराजस्यार्द्धभाग एव विवस्त्रः कार्यः । उर्वश्याश्चापि स्कन्धपर्यन्तमेव छायाशरीरं दर्शनीयम् ]

हृदेचक्षु :　　आयाति मेषमादाय कश्चिच्चौरो गवाक्षतः :
प्रयात्यन्योऽपरं हर्तुं निशायां सुप्तयोस्तयोः ॥

सुम्नआपिः　　[ साक्षि-निकोचम् ]
कथयन्ती चलाजस्रं मा विरंसीः कुमध्यमे !

हृदेचक्षुः (क्रुद्धा)　　नाहं वक्ष्यामि ते किञ्चित् स्वयं पश्य सुमध्यमे !

सुम्नआपिः　　मध्यान्तरस्तयोर्नश्च न सह्य इति मा क्रुधः ।

हृदेचक्षुः　　अन्यं मेषकमादाय प्रचलत्यपरो जनः
उद्बुद्धा तस्य मैकाराद् भूपं वदति चोर्वशी ।
रक्ष रक्ष महाराज मेषश्चौरेण नीयते ।
अहमप्यनुयास्यामि गतौ तौ यदि मद्गृहात् ॥

श्रेणिः　　शीघ्रं कथय भूपोऽसौ किमाचरितुमीहते ।
तमोभेदिबृहद्यन्त्रं धृत्वा पश्य, ब्रवीहि नः ॥
[नवं बृहत्तरं यन्त्रं निधाय पश्यन्ती, सहसा यन्त्र-मपसार्याक्षिणी निमील्य चोत्पतति ह्रिया]

हृदेचक्षुः　　ओह ! ऐलो विवस्त्रोऽपि तस्करावनुधावति ।

सुम्नआपिः　　मन्ये, जगत्तमश्छन्नं सन्धिभङ्गं न कल्पते ।

हृदेचक्षुः　　तस्कराभ्यां मोचयित्वा मेषौ नयति चत्वरम् ।
तदैव द्योतते विद्युन् नग्नं पश्यति चोर्वशी ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुजूर्णिः  गर्भस्थं पार्थिवं तेजो नेतुं स्वर्गं न शक्यते ।
अवधानेन द्रष्टव्या क्व गच्छत्युर्वशी सखी ॥

हृदेचक्षुः  (इतस्ततोऽन्वेषणपरा)
विहायसा पथैवैषा सम्प्राप्ता मानसं सरः ।
हिमाङ्के दर्पणं धृत्वा प्रकृतिर्यत्र सज्जते ॥

सुम्नआपिः  स्थानात्स्थानान्तरं गच्छन् राजा विरहकातरः ।
मान्वेषीदिति बुद्ध्या सा हंसी स्यान्मानसे किल ॥

सुजूर्णिः  अस्माभिरपि गन्तव्यं यत्रैषा रमतेऽधुना ।
सगर्भा नैव हातव्या हंस्यो भूत्वा विचर्यताम् ॥

पट-परिवर्तनम्

[जटाधरो विरह-पीडितो राजा नदी-नद-शैल-शिखर-वनोपवनेषूर्वशीमन्विष्यन् दृश्यते। दृश्याद् दृश्यान्तरं दर्शयितुममुकामुकचित्रैरङ्किता द्वित्रा जवनिकाः क्रमश उद्घाटनीयाः किंवाभिनयेन कल्पनीयाः]

ऐलः  याता क्षिप्त्वा विरहविकलं मां क्व नैराश्यगर्ते
रोचन्ते मे न दिनघटिका नैव रात्रेः क्षणाश्च
शीतो वातो दहति वदनं चन्द्रिका हृल्लुनाति
प्रातः सायं वहति रुधिरोऽस्मादृशां विग्रहेभ्यः ॥

वृक्षे वृक्षे विहगमधुपा आह ! गालिं ब्रुवन्ति
क्लेशं तन्वन् विरसरुदनैः कोकिलो हिक्कतीव ।
यद्यत्पूर्वं श्रवणसुखदं लोचनाभ्याञ्च रम्यम्
तत्तत्सर्वं युगपदधुनारुन्तुदं खल्विदानीम् ॥

आनेतुं ते प्रियतरपशू तस्करावन्वधावम्
स्थानेऽस्मन्निर्वसनगमनं कृष्ण-पक्षे क्षपायाम्
दौर्भाग्यं मे नियतिविहितैरट्टहासैस्तदैव
विद्युत्पातोऽजनि विलसनाद् विद्युतां हन्त ! मह्यम् ॥

भो भो वृक्षाः ! स्थलजलचराः ! क्वास्ति मे प्रेयसी सा ?
दामिन्या तेऽवनितलगृहान्मेघ ! यातान्तरिक्षम् ?
युष्माकं ये विषयरसिका यक्षगन्धर्वदेवाः
नीता कान्ता स्वभवनमितो येन, पूर्णं तदायुः ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[मानसरोवरं प्राप्य हंसानुद्दिश्य च]

हृता किमनया बुद्धया युष्माभिः सोर्वशी प्रिया ।
तस्या गतेः समक्षं वो जाता गतिरुपेक्षिता ?

[हंसीमेकां विहाय पक्षान्प्रसारयन्तो हंसा उड्डीयन्ते]

ऐलः [हंसीमभिलक्ष्य] दृष्टिभ्रान्तिर्न मे नूनमुर्वशी त्वं प्रियासि भोः !
स्वरूपमधितिष्ठस्व, हंसीरूपं विसृज्यताम् ॥

हंसी [मनुष्यवाचा] सम्यग्ज्ञातं महाराज ! उर्वश्येवाहमप्सराः
राज्यं त्यक्त्वा क्व यातोऽसि ? गच्छ शीघ्रं निकेतनम् ॥

ऐलः काठिन्यं ते विषम-हृदये सङ्गदोषात्कुचस्य
मोढुं शक्यं कथमपि मया नैव पाषाणतुल्यम् ।
प्रेमालापान्सुरतसरसान् हाय ! विस्मृत्य सर्वान्
पश्चात्तप्तुं स्वदयितजनं प्रेषयस्येव गेहम् ॥

हंसी (उर्वशी) प्रातः कालः प्रथमदिनगो नोधसं याति नूत्नाम् ।
शक्नोत्येवं प्रबलपवनं को वहन्तं निरोद्धुम् ?
भिन्नावावां खलविधिवशान्नैव संयोक्तुमीशौ ।
किं संलापैः प्रणयविनतैः केवलैर्गच्छ गेहम् ॥

ऐलः तूणीरे मेऽवचित-विशिखाः शेरते प्राणहीनाः
शत्रूणां चापगतहरणो वर्धते राः सदैव
मल्लक्रीडा-विगमितदिनाः सैनिकास्त्यक्तनादाः
साम्राज्यं मे निहतमनसः प्रत्यहं नाशमेति ॥

हंसी मन्ये पूर्वं प्रतिदिनमहं चुम्बिता त्रिर्भवद्भिः
नूनं नक्तं सततमभजो मामनन्यां वधूषु ।
स्मारं स्मारं सकलमनिशं दूयते केवलं हृत्
कस्ते लाभः शवखननतो गच्छ शीघ्रं स्वगेहम् ॥

ऐलः याता त्यक्त्वा विरहविकलं मां सखीष्वेव वस्तुम् ।
अद्यापि त्वं मिलसि न यथा गौः स्ववत्सं लुलायी ।
कष्टं कष्टं विदितमखिलं वर्ण्यते भुक्तभोगैः ।
मित्रस्योक्तं प्रणयविमुखं कष्टभूयिष्ठमस्ति ॥

हंसी दृष्टो यूथो यजनसमये तेऽङ्गने स्वर्वधूनाम् ।
युद्धक्षेत्रे विविधविबुधास्ते हितं चाचरन्ति ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदेशात्ते वहति सलिलं शस्यवृद्ध्यै नदीषु ।
तस्माचित्तं स्खलनविधुरं शिष्यतां गच्छ गेहम् ॥

ऐलः प्रेमासक्तोऽप्सरसभजं मानुषीनिम्नमानी ।
सा व्याघ्राद् विद्रवति हरिणी सारथे र्वा यथाश्वा ।
हृष्टो यादृक् प्रणयसुमुखस्तादृगेवाद्य नष्टः ।
उच्चैरुच्चैः पदमुपगता दीर्घपातं पतन्ति ॥

उर्वशी रूपं यन्नः सुविदितमदो नास्ति सत्यं स्वरूपम् ।
क्रीडन्त्योऽश्वा इव वयमिमाःपुंस्त्वमुच्छालयामः ।
मा ते सङ्गो भवतु रमणीष्वासु मायावतीषु ।
ज्ञात्वा तथ्यं त्यज मम कुलं गच्छ शीघ्रं स्वगेहम् ॥

ऐलः भ्रान्तो नासं, सदनमनिशं दीव्यतिस्मोर्वशी मे ।
वाञ्छाम्यस्मच्छिशुरपि तथा देवयेन्मत्कुलञ्च ।
वर्धिष्यन्तेऽमलचिरयशः सम्पदश्चास्य यत्नैः ।
सत्सन्तत्या कथय किमिहासाद्यते नैव भद्रम् ॥

उर्वशी भूपालस्त्वं प्रबलधनुषा पासि लोकं समस्तम् ।
युष्मद्गोत्रं सदयमनसा पाम्यहं गर्भमध्ये ।
सन्धिं भङ्क्त्वा विकृतमतिना नीडभङ्गः कृतो नौ ।
दाम्भं पौस्नं सपदि ललनां गर्हते विग्रहाय ॥

ऐलः पुत्रो मातुर्वचनवशगो मन्यते पैत्रिकीं स्वाम् ।
कोऽन्यस्तस्याः परिचितममुं कारयेत्प्रत्ययार्थम् ।
रोदिष्यावोऽबलशिशुरहञ्चौभकौ त्वद्विहीनौ ।
मात्रा त्यक्तो न भवति पितुश्चापि पुत्रः स्वकीयः ॥

पुत्रः पौत्रं जनयति यथा श्लाघ्यते वंशवृद्ध्यै ।
दीप्तं स्यात्ते श्वशुरसदनं तेन दीपेन कामम् ॥
को दम्पत्योर्विरहमभजत्स्वेच्छया पुत्रहेतो
र्न स्यादन्यः प्रणयरहितो मादृशः सन्धिभङ्गात् ॥

उर्वशी पुत्रं तेऽहं नियत-समये प्रेषयिष्यामि नूनम् ।
लोकादृक्या स्वसुतमभितो लालयिष्यामि नित्यम् ॥
मोक्षत्यङ्कं न तव तनयो नापि रोदिष्यतीति ।
मौढ्यं त्यक्त्वा व्रज निजगृहं नात्र मोहः प्रकाम्यः ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐलः ऐलस्त्यक्तो वसतु सततं भुक्तभोगस्त्विहैव ।
गच्छेद् वायं स्वयमपि यमं वा म्रियेताद्य रोगैः ॥
कामं चाद्यादकरुणवृकः दारयन् दीर्घदद्भिः ।
हित्वा रत्नं व्रजति न गृहं सोऽधुना रिक्त-पाणिः ॥

उर्वशी मृत्युं यायाद्भवदरिजनस्त्वादृशो नैव भूपः ।
अद्याद्राज्ञस्तव हृतधनान् दुर्वृको नैव वा त्वाम् ॥
स्नेहायोग्या पिशितरुचयो योषितश्छद्मवृक्यः ।
त्याज्या मैत्री नरमतिमुषामस्थिरप्रीतिभाजाम् ॥
रूपं हित्वाप्सरसमवसं मानुषीवाचरन्ती ।
चत्वारोऽब्दा विविधमरमे श्रीमतां राजगेहे ॥
आज्यं पीत्वा दिवसमनयञ्चैकभुक्तानुरक्ता ।
गर्भे युष्मत्कुलमघहरं धारयामि प्रयामि ॥

ऐलः अङ्गाङ्गानां मधुररुचिभिर्द्योतयन्तीं दिगन्तम् ।
आकर्णान्तं प्रसृतनयनैर्वर्षयन्तीं सुधाञ्च ॥
पुण्याचारो वशमुपगतामुर्वशीं कामयेऽहम् ।
आगन्तव्यं तपति सततं त्वां विना मानसं मे ॥

उर्वशी तर्पिष्यन्ते जितमृतिभयैस्त्वादृशैरेव देवाः ।
आशीर्वादैरनुदिनमिता वृद्धिमैश्वर्यविद्याः ॥
नेष्यन्ते त्वां स्वजनसहितं दिव्यलोकं सदेहम् ।
देवा ऊचुः—सुरपुरसुखं भोक्ष्यसे मोदमानः ॥

[ उर्वशी दृष्टिपथाद्दूरमपसर्पति ]

ऐलः सैषा किं प्रेयसी त्यक्त्वा गताल्पस्खलने गृहात् ।
न स्मर्तव्यैव तेनेयम्, आह ! तत्सम्भवेत्कथम् ?

[ उपस्थितौ द्वौ गन्धर्वौ ]

कौ युवाम् ? मम पार्श्वे किम् ? वाऽलं जिज्ञासयानया ।
किंवाधुना मोषितव्यं ? सर्वस्वं मे गतं गतम् ॥

गन्धर्वौ (प्रथमः) नावां चोरयितुं राजन् ! आगतौ हितकारिणौ ।
तौ चौरौ तु समक्षं ते स्वप्नेऽप्यागन्तुमक्षमौ ॥
जात्यै द्रुह्यसि किं व्यर्थं व्यक्तिसम्पादितागसे ?
अनलं दत्तमावाभ्यां शिरसा त्वं वहेर्यदि ।
आकृष्टा तूर्वशी नूनं स्वर्गादवतरिष्यति ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(द्वितीयः) रसायन-प्रभावो यो वह्नितापादुदेष्यति ।
अलौकिका तु तच्छक्तिर्भवत्युत्पद्यते हि सा ॥
तदा त्वां परितः सैव चक्रवच्च भ्रमिष्यति ।
त्वय्येव सन्निविष्टासावानन्दं जनयिष्यति ॥

ऐलः [मन्यमानः] यद्यदादिश्यते तत्तत् सर्वमैलः करिष्यति ।
दुराशापङ्कमग्नेन तृणमप्यवलम्ब्यते ॥

[ राजा शिरसा घटं वहन् दृश्यते, अपरपार्श्वतो गन्धर्वौ प्रस्थितौ ]

## पटपरिवर्तनम्

### स्थानम्—मानसरोवरः

[ हंसरूपिण्यः सुजूर्णिः, श्रेणिः, सुम्न आपिः, हृदेचक्षुश्चौर्वश्या (हंसीरूपिण्यैव) सह मनुष्यवाचा संलपन्त्यो दृश्यन्ते । ईषत्कम्पिताभिः सलिलाभाभिः साटिकाभिः सरोवरो निर्मापयितुं शक्यते ]

सुजूर्णिः (उर्वशीं प्रति) मानवी रूपमासाद्य गता स्वर्गात्तु भूतलम् ।
भूतले किं पुनरिदं हंसीरूपमवस्थिता ?

श्रेणिः हताः सुरा हि मानव्या हंस्या चैलो पृथुश्रवाः ।
अप्सराश्चाप्सरा अस्तु जीवेतां स्वर्भुवावुभे ! ॥

उर्वशी (हंसी) गन्धर्वैः सूचितं—मूढो विक्षिप्तो भूमिपो गतः ।
बोधितोऽप्यप्सरा नैव ग्राह्या नारीव सुव्रता ॥

सुम्नआपिः त्वामहं सखि ! पृच्छामि, अपि न स्मर्यते नृपः ?
अपि स्वस्थास्ति भवती, किं गतं नैव शोचति ?

उर्वशी यथेयमप्सरा नास्ति पृच्छतीत्थं सखी मम ।
अनागतं गतञ्चैव शोचन्त्यप्सरसः कदा ?
अनुभूतो सहैलेन वसन्त्या साम्प्रतं मया ।
तस्य पाशविको वेगः शिथिलः कामिनी-प्रियः ।
वर्षारम्भाच्चतुर्थाद्धि संयोगस्यावयोर्नृपः ।
प्राशंसत्कामहीनञ्च विशुद्धं प्रेम भूरिशः ॥

हृदेचक्षुः नरः प्रेम्णे विशुद्धाय स्पृहयति यदा भृशम् ।
ज्ञेयं तस्य गतं पुंस्त्वं प्रियालावण्यमेव वा ॥

उर्वशी प्रतिष्ठानपुरं नेतुं भूपेशः प्रार्थयत्किल ।
कीदृशी प्रार्थना राज्ञः कथन्नैव धृता····धृता····॥

( विवक्षां निगूढयति )

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुजूर्णिः [ विवक्षां पूरयति ] कथन्नैव धृता बलात् ?
यदा कश्चिद् बलोन्मत्तो दैत्यो हरति कामिनीम् ।
आस्वादयत्यनिच्छन्ती सा मामामिति भाषिणी ॥

श्रेणिः कामासक्तोऽक्रियो नेष्टो नाप्यकामश्च सक्रियः ।
कर्मण्यो विषयासक्तः प्रमदानां प्रियो नरः ॥

सुम्नआपिः समयस्य प्रभावोऽयं वर्तते कस्य दूषणम् ।
क्व वैराग्यमिदानीं ते क्वौत्सुक्यञ्च तदा भुवे ! ॥

उर्वशी अप्सरास्त्रितली ज्ञेया स्वभावेन बहुव्रता ।
न केनापि वयं ग्राह्याः पतिधर्मपरा इति ॥
एकमिच्छन्ति मानव्यो वयं हार्दं नवं नवम् ।
प्रियताप्सरसो विद्युन् नार्या दीपशिखा मता ॥
मा भूद् वा सन्धिविच्छेदो भूपेन श्रीमता तदा ।
उर्वश्या कामरूपिण्या त्याज्य एव नृपोऽबलः ॥

पटपरिवर्तनम्

## स्थानम्—मानसरोवरात्प्रत्यावर्तन-मार्गः

[ राजा गन्धर्वदत्तमग्निपात्रं वहन् द्वित्रावारं मञ्चं पारयन् दृश्यते ]

विदूषकः [ प्रविश्य ] उह्यतेऽयं कथं वह्निः ?

राजा उर्वशीं प्राप्तुमिच्छया ।
गन्धर्वाः कथयन्त्येष सेवयाभीष्टदायकः ।

विदूषकः हृतौ मेषौ यैः पूर्वमानीतोऽयं ततोऽनलः ।
त्वन्मन्युवह्नितो भीता होतुमिच्छन्ति त्वामतः ॥
अग्निर्वर्यस्तदैवायं यदाङ्के कौमुदी लसेत् ।
अस्तु, पश्याव मृद्भाण्डं कुर्वे मुखमनावृतम् ॥
[ भाण्डमुखमनावृतं करोति ]

राजा [ वस्तूनि चिन्वन् ]
वह्नेर्नाम न कुत्रापि पत्रपुष्पाश्मधातवः ।
पादपानां च मूलानि दृश्यन्तेऽस्मिन्द्रवास्त्रयः ॥

विदूषकः गुप्तरूपमिदं वह्नेः प्रतीकात्मकमेव वा ।
मन्थनाच्छुष्ककाष्ठानां वह्निरुत्पद्यते न किम् ?
द्रव्याणामपि चैतेषां चूर्ण-भस्मादि-संयुतम् ।
सेव्यते वासनावृद्ध्यै वाजीकरणमौषधम् ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा किं मेऽनेनाग्निना साक्षादुताहो कामवह्निना ।
प्रार्थिता नागता कान्ता, सानेया कथमग्निना ?
अग्निमेतमतोऽत्रैव त्यक्त्वा गच्छामि काननम् ।

[अग्निपात्रं भूमौ त्यक्त्वाऽग्रे व्रजति । विदूषक स्तमनुगच्छति । एकपार्श्वतो निष्क्रान्तावपरतो रंगमञ्चे समायातौ । ]

[ आकाशवाणी ]

अग्निर्जंगज्जीवनमन्त्य-मृत्युमनिद्धमालिङ्गय मावमंस्थाः ।
दीप्तो दहेत्पर्वतमिन्धनानाम् इन्द्रोऽपि भुङ्क्तेऽस्य मुखेन हव्यम् ॥

प्रेष्यास्तथानेन नदीशबाला यथाङ्गने क्रीडितुमन्तरिक्षे ।
वैश्वानरोऽन्नं पचतीङ्घ्यवह्निर्दावा वनं किन्तु दहेत्कदाचित् ॥

देवैरुपास्यां प्रददाति मेधामग्निः सदोपासकमानवेभ्यः ।
शूरेषु शौर्यं च महत्त्वकाङ्क्षा कामोऽखिलप्राणिषु वह्निरेव ॥

अग्निं विना किंपुरुषस्त्वपुंस्त्वः किंस्त्री च षण्डा मनुजस्वरूपा ।
सौन्दर्यदृष्टिः शुभकाव्यसृष्टिर्वह्निं विना नाप्यनुरागवृष्टिः ॥

सेवस्व वह्निं च यशो लभस्व तेजो नवं राजसुखं वृणीष्व ।
त्रिधा विभज्याज्यहवींषि हुत्वा परत्र स्वर्गे सुखमाचिनुष्व ॥

ऐलः माहात्म्यमग्नेर्विदितं त्रिलोके न तं विना कापि गतिर्जगत्याः ।
आश्वासनीयः कृपयाऽर्चितेऽग्नौ प्राप्या प्रियैलेन किमुर्वशी सा ?

[ आकाश-वाणी ]

यां सुन्दरीं मन्यस उर्वशीति यस्या वियोगाद् गतसौख्यसंज्ञः ।
सा युष्मदर्थे सुषमावती स्यान् मांसास्थि-पिण्डं गतयौवनेभ्यः ॥

या स्थूलदेहा भुवि हस्तिनीव सा सुन्दरीवाद्रियते सकामैः ।
या कामिनी विंशतिवर्षकल्पा सैवाप्सराः किं महिषी परी वा ॥

उद्दामकामाः पुरुषाः सतृणा दृष्ट्यार्पयन्ति प्रमदाजनानाम् ।
अलङ्कृतीश्चापि सरागभावान्, अभ्येति गर्दभ्यपि दर्पणं तत् ॥

नार्यस्त्यजेयुः किल भूषणानि न चेन्नरः पश्यति ता अधोऽक्षः ।
नार्यैरुपेक्ष्यः पुरुषस्तथैव त्यजेत्सुवस्त्राण्यथवा म्रियेत ॥



CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संभोगबाहुल्यवशान्निरोजास्त्यक्तोऽसि भो कामुकया विरक्त्या ।
प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा जगत्यां भोगाक्षमं कापुरुषं त्यजन्ति ॥

तवोर्वशी नास्त्यपरा हि कामात्कामाग्निदीप्तिः प्रथमं वरेण्या ।
दीप्ते तु कामे गृहमध्यतिष्ठत् तस्मिन् विनष्टे च पलायिता सा ॥

तिर्यग्गतिं लोचनयोस्तरुण्याः सालस्यलास्यञ्च पदोर्निधाय ।
कट्या भरन्दं कुचयोर्निवेश्य कामाग्निरङ्गेषु तनोति रूपम् ॥

केशेषु कृष्णो वदने तु गौरः कपोलयोः सारुणिमोऽधरे च ।
नेत्रे त्रिरङ्गः कुचयोश्च चित्रो नारीषु कामोऽस्ति यथेन्द्रधन्वा ॥

लावण्यमुद्भूतमथोरसि स्वं निजेतरं लिङ्गिनमावृणीते ।
आत्मस्थमानन्दमुपेत्यवेति जातं सुसङ्गादितरेतरस्य ॥

आमोद इष्टो विषयिश्रितत्वान्न प्राप्यतेऽसौ विषयात्तु सिद्धम् ।
भ्रान्त्या मनुष्याः सुरतप्रसङ्गे प्रायः कदाचारमिहाचरन्ति ॥

अस्त्वस्तु रम्यो विषयो नवीनो मनस्तृषायाः परिवर्धनाय ।
जानीहि पेयं शमनाय चास्यास्तवैव पार्श्वे न नवागतस्य ॥

अतो निवर्तस्व गृहं स्वकीयं पात्रस्थमग्निं शिरसा वहंस्त्वम् ।
यामुर्वशीं मार्गयसीह राजन् ! प्रतीक्षते सा भवने त्वदीये ॥

घटस्थितं चौषधवस्तुजातं सेवस्व नित्यं स्वबलाभिवृद्धयै ।
अन्तःपुरस्थाः कमनीयकान्ता यस्माद् भवेयुश्च तवोर्वशीव ॥

[ आकाशवाणी विलीयते, राजा च किञ्चिद्विचारयन् विकीर्णां सामग्रीमवचित्य घटे निदधाति । नेपथ्ये श्रूयते ]

इति त्वा देवा इम आहुरैल यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥

( ऋग्वेद १०-८-९५-१८ )

दम्पत्योरादिजं कामं व्यस्तं जनयितुं रतिम् ॥
विभज्याग्निं त्रिधा त्वैलो भारमुक्तं व्यधात्किल ॥
हविष्यं भौतिको भुङ्क्ते सूक्ष्मः कामयते हृदि ।
उदरस्थः पचत्यन्नं त्रिधारूपात्मकोऽनलः ॥
वासितोऽग्निर्मनस्येवं यज्ञेन भिन्नलिङ्गनोः ।
स्वर्गेऽप्यप्राप्तमानन्दं वष्टि नाम्नोर्वशी भुवि ॥

पटाक्षेपः

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# देवो याति भुवनानि पश्यन्

## स्थानम्—देवपुरी (अमरावती)

[देवशिल्पी त्वष्टा सरण्यूनाम्न्याः पुत्र्या विवाहार्थं मित्रेण सौमिलेन सह वार्तापरो दृश्यते]

त्वष्टा — विश्वस्रष्टुर्भगवतः कृपास्ति ।

सौमिलः — आम्, आम् । न तां विना प्राप्तुं शक्यत ईदृशी दक्षता । त्वच्छिक्षिताः शिष्या विशेषत ऋभुः, त्रिभ्वा, वाजा, देवलोके सुदक्षाः शिल्पिनो मन्यन्ते ।

त्वष्टा — गतिशीलतैव गुरोर्गरिमा । कला सुपात्रसंक्रमणादेव यशस्करी सिद्धयति ।

सौमिलः — सर्वथा प्रशंसार्हा ते वास्तुकला । अधुना निखिले देवलोके भवद्यशो गीयते । अहो भव्यता भवद्वास्तुकलायाः ! महानसि त्वम् ।

त्वष्टा — नाधुना मे महत्ता निरापदा । चिन्तितोऽस्मि ।

सौमिलः — किमवलम्ब्य ?

त्वष्टा — त्वं तु जानास्येव यत्सप्तवर्षपूर्वं सरण्यूजननी महत्तेजसि न्यलीयत । तदासीत्सरण्यूर्नववर्षदेशीया बालिका । तथानभिज्ञा यदेकदा स्वमातरं जिगमिषया सापृच्छन्मां तस्या वसतिम् । अपि निर्वाणं गता ज्योतिर्दर्शयितुं शक्यते ? [तूष्णीमास्ते]

सौमिलः — कथमवरुद्धोऽसि ?

त्वष्टा — सरण्यूर्वयःसन्धिस्थाऽधुना । कश्चिद् योग्यवरो लभ्यते चेत्तस्या उद्वाहं कुर्यामिति मे चिन्ताविषयः ।

सौमिलः — अस्ति सूर्योऽनूढः ? न मया क्वापि तादृशं दीप्तं मुखं दृष्टं कस्यचिदन्यस्य । रश्मीन् विकिरति तत् ।

त्वष्टा — न स्यात्काचिद्धानिस्तस्य मुखमात्रं दीप्तिमच्चेत्; किञ्च तस्य तु सम्पूर्णं शरीरमेव ज्योतिष्मदस्ति । कथं सहिष्यते सा तस्य साहचर्यम् ? नहि, नहि, काचित्तुषारकायैव तमुद्वोढुमर्हति । वयसाप्यधिकोऽस्ति सः ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौमिलः सन्ततिः सदैवावमूल्यते पितृभ्याम्। सरण्यूर्न तथोद्वोढुमक्षमा यथा त्वं मन्यसे। स्यादप्यक्षमाधुना, विवाहानन्तरं सर्वं समाधीयते। केचित्प्रहृष्टा गार्हस्थ्यं साधयन्ति, केचिदसन्तुष्टा जीवन्ति, इतरे चोदासीना गतानुगत्या समयं यापयन्ति। भद्र ! अप्यस्ति कश्चिदन्यो भद्रतरो वरो येन सरण्यूः परिणेया ? अतोऽधिकमविचार्यैव देया सा सूर्याय।

त्वष्टा अपृष्ट्वा सरण्यूम् ?

सौमिलः त्वं ब्रूहि ओमिति। कुलीना सा पितरमनुमंस्यते।

त्वष्टा अस्त्वहं पुत्रीमाशंसानि सूर्यं वरयितुम्। त्वं तं स्वेनैव साकमानय।

सौमिलः स स्वयमागत्य त्वां सरण्यूपाणिं याचिष्यते।

त्वष्टा किम् !

सौमिलः अहं मदनं निवेदयिष्यामि निशितीकर्तुं निजशरान्। सद्योजातानि कुसुमानि कलिकाश्चाभिनवाः सन्धातुम्। प्रवेशयतु भवान् सखीभिः सह सरण्यूं प्रमदोपवनम्। मदनस्तत्रैव उभावेव संलक्ष्य पुष्पबाणान् चालयिष्यति। इत्थमभीप्सितं प्राप्तमेव जानातु।

त्वष्टा किमित्थं भणसि कन्यापितरम् ?

सौमिलः ममापि ते कन्या कन्यकैव। व्यवहारवित्पिता सिद्धिमपेक्षते न तु साधनानि। विवाहात्पूर्वं वरकन्याभ्यां मिथो मिलनावसरदाने किं कथञ्चानौचित्यम् ? जाने, परम्परावादिता त्वां बाधते। अस्तु, जानीहि न मया किञ्चिदुक्तं, न त्वया श्रुतम्। अहं स्वयं सर्वं सात्स्यामि [निस्सरति ततः]

## पट-परिवर्तनम्

स्थानम्—सुलभसर्वसुखं स्वर्गस्थं प्रमदोपवनम्।

समयः—दिनस्य प्रथमः प्रहरः।

[ वसन्ततौ गुञ्जद्भ्रमरनिकरैः कूजत्पक्षिकुलैः प्रस्रवज्जलसीकरसिञ्चितैः पुष्पलतावितानैः संकुलमुपवनमनुपमां शोभां विधत्ते। अप्सरसो गायन्त्यो नृत्यन्ति। सखीभिः सह प्रविशति सरण्यूः। अरुणेन साकं सूर्यदेवश्चापरपार्श्वे सामाजिकैरीषदेव दृष्टो नृत्यं पश्यन्नास्ते। भ्रमन्तीं नृत्यं

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पश्यन्तीश्च सरण्यूं प्रति दृष्टिपातं करोति। सामाजिकैः सुदृश्यो मञ्चस्थपात्रैरदृष्टः कामः सूर्यं सरण्यूञ्च पुष्पैः सन्दधाति। तौ च पुष्पबाणविध्यमानावीषद्विचालितौ मिथः सतृष्णं पश्यतः ]

[ अप्सरसो गायन्त्यो नृत्यन्त्यश्च ]—

कल्पतरोर् हृदये कूजति कुहू कुहू।
पिकी प्रणयि-विरहे हिक्कति हुहू हुहू॥

विकिरति कुसुमरजो वर्षति मकरन्दः।
लता-लग्न-पुष्पं चषति मधुपवृन्दः।
शिखी शाखिशिखरे नृत्यति ढुहू ढुहू॥

वापयितुं मुक्तां शेतेऽसौ शुक्तिः।
रतिमनुसरतीयं गुट्टरगूं उक्तिः।
सारङ्गः पुलिने विलपति पिऊ पिऊ॥

लाति वसन्तोऽसौ प्रियता-सन्देशम्।
आनन्दं रसिको लभतेऽनेकविधम्।
बुक्कति यतिर्वने नहि, नहि मुहुर्मुहुः॥

[ नृत्यावसाने त्वष्टा सौमिलेन सह सम्प्राप्याधुना सुदृष्टं सूर्यमुपगच्छति। सूर्योऽधोमुख एव किञ्चिदग्रे सरति। लज्जिता सरण्यूः सखीभिः सहापर-पार्श्वतो निष्क्रान्ता। आत्मानमपराधिनं मन्यमानं सूर्यं त्वष्टा सावधानं निरीक्षते ब्रूते च ]

त्वष्टा [ सूर्यं ] स्वस्थो भव वत्स! अनुमीयते त्वया सरण्यूः सखीभिः सहात्र सम्प्राप्ता सम्यग् दृष्टा। नैष तेऽपराधः। युवा प्रथमां युवतिं प्रणयदृष्ट्यापि पश्यति चेत्तन्नाप्राकृतं न च दुराचरितम्। नाहं जाने तया सह ते वार्तालापो जात उताहो न, किन्तु तां दृष्ट्वा यज्जातं ते मनसि, तत्त्वया निवेदनीयं निःसङ्कोचम्।

सूर्यः [ तूष्णीमास्ते ]

त्वष्टा कथं मौनमाकलय्य स्थितोऽसि?

सूर्यः बिभेति मद्वाणी मुखादबहिर्निःसृतुम्।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्वष्टा भा भैषीः । अकुतोभयं वद ।

सूर्यः स्त्रीविरलायामस्यां कक्षायां न मे काचित्सहचारिणी । श्रीमत्पुत्रीं सरण्यूं दृष्ट्वाभिलषेऽहं तामुद्वोढुम् । अनुग्राह्योऽहं सरण्यूपाणिदानेन ।

[ नेपथ्ये नूपुरध्वनिः श्रूयते ]

त्वष्टा प्रतीयते सरण्यूरित एवागच्छतीति । सा मन्यते चेन्न मे काप्यापत्तिः । त्वं स्वयमेव तस्या मनोऽवगाह्य मां संसूचयितुमर्हसि । अस्त्वहं व्रजामि [ निष्क्रान्तः । सूर्योऽपि मञ्चस्यैकपार्श्वेऽदृश्यस्तिष्ठति ]

सरण्यूः [ प्रविश्य गायति ]

जीवन-सङ्गीतम् ।
गुञ्जति तद्दिवसात्तेन मनो नीतम् ।।
मेघालोके मे मञ्जीरौ रणतः ।
विपिने नागफणी कीदृक्कण्टकितः !
स्मरति निजातीतम् ।।

सूर्यः [सम्प्राप्तः ] आश्लिष्य स्मर्तुं पाठं यदधीतम् ।
जीवन-सङ्गीतम् ।।

सरण्यूः त्वामाश्लिष्य भवेन्नाम्ना शेषः कः ?
नैषोऽहं प्राणी पतेत्पावके यः ।
हृदयं मे भीतम् !
जीवन-सङ्गीतम् ।।

सूर्यः दहति हिमं नाग्निर्निवारयति शीतम् ।

उभौ किमपि न विपरीतम् ?
जीवन-सङ्गीतम् ।।

[ करौ मेलयित्वा ]

[ भ्रमन्तौ त्वष्टा सौमिलश्च सम्प्राप्नुतः । स्मेरमुखः सूर्योऽधोमुखी सरण्यूश्च प्रणमतः । त्वष्टा क्षणमेकं सूर्यं सरण्यूञ्च निरीक्ष्य सौमिलमवलोकयति । अक्षिसंकेत-मुद्रया सौमिलोऽनुमोदयति तयोर्मिलनम् ]

त्वष्टा अनुमीयते यन्ममाभीष्टं तदुभाभ्यां निर्णीतमिति । सौमिल ! [ सरण्यू-सूर्यावपवार्य ] सम्पादनीयः सद्य एव तयोरुद्वाहः ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौमिलः कथं सद्यः, सपद्येवेति वक्तव्यम् ।

त्वष्टा तत् करिष्यमाणसम्भारा वयं चलेम ।

[ सर्वे प्रस्थिताः ]

पट-परिवर्तनम्

स्थानम्–अमरावती

[ सूर्यकान्तमणिभिः प्रोद्भासिते प्रासाद-कक्षे सरण्यू-र्वर्षद्वयकल्पौ यमलौ पुत्रीपुत्रौ यमीं यमञ्च लालयन्ती दृश्यते । भोजनपानादिभिः परिपुष्टौ शिशू क्रीडनकैः खेलतः । गम्भीरान्तःकरणा सा पृच्छति परिचारिकाम् । ]

सरण्यूः न निवर्तिता श्रुतिरद्यावधि ?

विश्रुतिः नैव, नाद्यावधि ।

सरण्यूः महद्दुःखम् । नित्यमेव सा मत्सदृशां स्त्रियमन्वेष्टुं लोकलोकान्तरेषु भ्रमति मन्नैराश्यपरिवर्धनाय । गच्छ त्वं श्रुतेरन्वेषणाय [ यथा-ज्ञापयति महिषीत्युक्त्वापसर्पति । प्रविशति च सूर्यः । भीते-क्षणा सरण्यूरुत्थायासनं प्रदर्शयति । ]

सूर्यः प्रतीक्षतो मम वर्षत्रयं गतम् । नाधिकं प्रतीक्षितुं शक्यते ।

सरण्यूः माधुर्यं जनयति प्रतीक्षा । अपि नैव ?

सूर्यः अलमतिमाधुर्येण । अधुना शिशुभ्यामपि वर्षद्वयमतिक्रान्तम् । श्वो भूलोकादागतोऽहं त्वया सत्कार्य आश्लेषेण ।

सरण्यूः श्व एव कथम् ?

सूर्यः ऊष्मणा पीडितोऽहं शान्तिमपेक्षे भृशम् । आशासे पूरयिष्यस्यभिलाष-मिति [ कपोलोपरि करस्पर्शं दत्वा निष्क्रामति । सरण्यू-श्चिन्तिता खं सूचयति । ततः प्रविशति श्रुतिविश्रुतिसहायैका स्त्री । तिस्रोऽप्यभिवादयन्ति सरण्यूम् । सा च सस्नेहं स्वागतं व्याहरति नवागताम् । सरण्यूस्तां स्त्रियं परितः परीक्ष-माणा दृश्यते । द्वे एव सख्यौ निष्क्रान्ते ]

सरण्यूः [ दर्पणं करस्थं कृत्वा तस्मिन् क्रमशः स्वकीयामाकृतिं नवागतां स्त्रियञ्च पुनः पुनः पश्यन्ती प्रहृष्टा पृच्छति ] किंनाम्नी भवती ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नवागता शीलभद्रा ।

सरण्यूः नाद्यावधि कस्यचिदपि पाणिगृहीती ?

नवागता सम्यग्ज्ञातम् ।

सरण्यूः पितरौ ?

नवागता नाहं जाने । पाताललोकस्थाश्रमस्य प्रवन्धकानेवाहं स्वसंरक्षकान् मन्ये ।

सरण्यूः [दर्पणं शीलभद्रायाः करे निधाय] मामवलोक्य दर्पणे स्वाकृतिं पश्य ।

नवागता [ तथैव कृत्वा ] यथा यमले भगिन्यौ ।

सरण्यूः सर्वथा मे छाया प्रतीयसे । अपि स्वीकरोषि मम भगिनी भूत्वात्र स्थातुम् ?

नवागता आम्,नूनम् ।

सरण्यूः [ तस्या गृहीतोज्झितं करमुद्दिश्य ] हिमस्पर्शस्ते करः । अपि शैत्यं बाधते ?

नवागता नैव, प्रकृत्या शीतलाहम् ।

सरण्यूः यतोऽभिन्नाकृती आवाम् अतो न चेदापत्तिस्त्वमत्र छायानाम्ना ज्ञास्यसे । छायावच्छीतला शीता वाप्यसि । [ विहसतो द्वे एव ]

नवागता स्वीकरोमि ।

सरण्यूः अपि स्वीकरोषि मे मित्रत्वम् ?

नवागता स्वीकरोमि ।

सरण्यूः अपि स्वीकरोषि मे सापत्न्यम् !

नवागता सापत्न्यम् !

सरण्यूः सापत्न्यमेव ।

नवागता अपि सापत्न्यं मित्रत्वञ्च सहैव निर्वोढुं शक्येते भवत्या ? नेच्छति काचित्स्वस्था योषित्सामान्यस्थितिषु स्वपतिं विभक्तुम् ।

सरण्यूः असामान्या स्थितिश्चेत् ?

नवागता जिज्ञासितव्या मया सा ।

[सरण्यूश्छायायाः कर्णे जनैरश्राव्यं किञ्चित्कथयति । मूक-संकेतैरेव छाया प्रतिवदति]

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थानम्–सूर्यसौधस्यान्तः पुरम्

समयः–निशामुखम्

सरण्यूः [स्तिमितनयना शयाना दृश्यते]

सूर्यः [प्रविश्य] यदैव दिनान्ते स्वावासमागच्छामि शान्तिलाभाय, तदैव त्वामहं मत्तोऽप्यधिकां श्रान्तिक्लिन्नां पश्यामि। पूर्वमपि यमयम्योर्गर्भस्थयो र्दिनेष्वपि त्वं गर्भभाराधिक्यात्खिन्नादृश्यथाः, किञ्च मां त्वं सदैव स्मयमानाभाषथाः। अपि बिभेषि प्रसवकष्टेभ्यः ?

सरण्यूः [न किञ्चद् वक्ति]

सूर्यः नास्ति भयकारणम्। न खल्विदानीं तेऽल्पवयः। अपत्यद्वयं जनयित्वापि बिभेषि कन्यकेवानूढा।

सरण्यूः [पूर्ववन्मौनमाकलय्य शयानास्ते]

सूर्यः [हस्तेनोदरं संस्पृश्योपहासपरः] प्रतीयतेऽस्मिन्समये शिशुचतुष्टयं जनिष्यते। किञ्चाधुना मासद्वयमात्रं जातम्.....

[सरण्यूः पूर्ववद्गम्भीराकृतिः सूर्यस्य हस्तमपसारयति] अपि कुशलिनी त्वम् ?

सरण्यूः आम्।

सूर्यः परिवर्तितेव प्रतिभासि।

सरण्यूः अहम् ! [परावर्तते]

सूर्यः मासद्वयपूर्वं दीर्घकालानन्तरं यदाहं त्वयानुकम्पितः प्रणयदानेन, तदारभ्य ते स्वभावे व्यवहारे चोत्तरोत्तरं परिवर्तनशीलता वर्धत एव। क्व स्तो बालौ ?

सरण्यूः स्यातामत्रैव क्वापि ! [सूर्य आकारयति 'यम ! यमि !' इति। संलग्नकक्षादागतो रुदनध्वनिः श्रूयते। सूर्यः कपाटावुद्घाट्य यमं यमीञ्च द्वावेव रज्ज्वा बद्धौ भूमौ लोटन्तौ पश्यति, बन्धनान्मोचयति च तौ]

सूर्यः [शिशू] को युवयोरपराधो येन मात्रा दण्डितौ ?

यमः नाहं जाने किं मया यम्या वा कृतमकरणीयं येनावां ताडितौ रज्ज्वा बद्धौ च मात्रा।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्यः अपि सेवितं किञ्चिज्जीवनधारकम् ?

यमी मात्रा न किञ्चिदपि दत्तम् । हीयन्तेऽस्मत्प्राणास्तद्विना ।

सूर्यः [रोषताम्राक्षः सरण्यूं प्रति] कासि त्वं सरण्यूवेषधारिणि ? न मात्रा दण्ड्यन्त इत्थं स्ववालास्त्रैलोक्ये । नासि त्वं सरण्यूः । ज्ञाताधुना ते स्वर-विकृतिः । शीघ्रं भण । मा भूःशापग्रस्ता ।

सरण्यूः [ करबद्धा ] क्षन्तव्याहम् । नाहं सरण्यूः । तया नियुक्ता छायास्मि ।

सूर्यः क्व गता सा, कथञ्च गता ?

छाया नाहं जाने क्व सा गता वडवारूपमुपधार्य ।

सूर्यः वडवारूपम् ! देवी किमर्थं वडवाऽभवत् ?

छाया बिभेति सा भवत्संयोगात् । पलायनार्थं वडवा स्यात् ।

सूर्यः कथं जातो युवयोः संयोगः ? कुतस्त्वमागतासि ? कौ ते पितरौ ?

छाया पाताललोकवासिनी सरण्यूजनैरत्र प्रापिता । आश्रमवासिनी नाहं जाने स्वपितरौ । यः कश्चित् मामनुगृह्णाति तमहमनुसरामि । सरण्यू-शरणमागता यथा तयात्र नियुक्ता तथैवाचरामि ।

सूर्यः मन्ये तया त्वं मत्पत्नीत्वे नियुक्ता, शिशुताडनमपि तया समर्थितम् ?

छाया तत्तु तयोर्विवादशमनाय मया तौ दण्डितौ ।

सूर्यः न काचिज्जननी शिशून् तथा दण्डयति यथाद्य त्वमदण्डयः ।

छाया क्षन्तव्यो मेऽपराधः । तयोर्लालन-पालने स्वकर्तव्यं मन्यमानाऽपि नाहं सरण्यूवत्तौ प्रीणयितुं समर्था ।

सूर्यः अक्षम्योऽपि तेऽपराधः क्षन्तुं शक्यतेऽग्रे तौ स्वापत्ये इव परिचर्येते चेत् !

छाया प्रतिजानेऽहं तथाकर्तुमग्रे ।

सूर्यः सरण्यू मां परित्यज्य वडवा भूत्वा पलायितेत्यत्रापवादः प्रसरिष्यतीति न स्थातुं शक्यते मया, अतोऽहं गच्छामि सरण्यूसकाशं यत्र कुत्रापि सा स्यात् ।

छाया सगर्भां मां विहाय व्रजिष्यति मत्पतिः ? अहमपि त्वामनुयास्यामि । किं भविष्यत्यनयोर्भवच्छिश्वोः ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्यः आम्, गन्तव्यं तु त्वयाप्यस्मात्स्थानात्, किञ्च न मया सह सरण्यू-सकाशम् । त्वां मातरं मन्यमानयोस्तयोर्मनसि समानाकृतिर्भेदं जनयिष्यति । यौवने ज्ञातरहस्यावपि तौ न द्रुह्यतः स्वपितृभ्याम् । अतो गन्तव्यं त्वया विपरीतां दिशं बालौ नीत्वा ।

छाया नाहं जाने कुत्र सा निवसतीति । कथमवधारणीया स्वगमनदिङ् मया ?

सूर्यः स्वभावतोऽनियन्त्रिता अश्वाः स्वाभिमुख्यं धावन्ति । कथयास्मात्स्था-नात्कां दिशं सा प्रातिष्ठत् ।

छाया सास्मात्स्थानादुत्तर-दिशां प्राव्रजत् ।

सूर्यः अहमुत्तरावर्तं एव तामुपतिष्ठे ।

छाया मया बालाभ्यां सह दक्षिणादिक्....।

सूर्यः आम्, आम्, कोणार्कसेविता पुरी । अचिरादेवाहं त्वत्पार्श्वस्थो भविष्यामि । त्वदध्यासितो वैतरणीपार-प्रदेशो यमशासिता पुरी संयमनी नाम्ना ख्यातिमेष्यति ।

छाया मदध्यासिता नगरी सरण्यूपुत्र-नाम्ना.....?

सूर्यः पुनः सापत्नभावो बाधते त्वाम् ! त्वं जनिष्यमाणेन स्वापत्येन सहोत्तरस्यां दिशि भगवतामरनाथेन रक्षितादमर-लोकादधस्त्रि-विधसमीरव्यजितऋद्धि-सिद्धिपरिपूर्णे सारस्वत-प्रदेशे सुखमेधिष्यसे । अहञ्चोत्तरापथगामी श्रमाधिक्यप्रस्फुटितदीप्तिस्त्वच्छीतलसम्पर्कं शान्तिं लप्स्ये । त्वं प्रथमं दक्षिणावर्तं दृष्ट्वोत्तरवासिनी भूयाः सा च प्रथममुत्तरापथमचिनोदिति तया दक्षिणावर्ते वस्तव्यम् । अस्त्वहं गच्छामि अरुणेन सह । स्वशिशुवद्वर्तयितव्यौ यमी-यमौ यावदहं प्रत्यावर्ते तयोर्मात्रा सह दक्षिणावर्ते त्वत्सकाशम् ।

छाया अहमपि सबाला श्वः परश्वो वा मध्यान्तरिक्षस्थमिदं स्थानं परित्यज्य यथादिष्टं दक्षिणावर्तं प्रस्थास्यामि [ अरुण आगच्छन् दृश्यते । छाया निष्क्रामति]

सूर्यः स्मृतः समागतोऽसि मित्र !

अरुणः स्मरतस्त्वागच्छामि, गच्छतोऽग्रेसरामि । नैवेत्थं किम् ? क्व गन्तव्यम् ? किमर्थञ्च ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्यः अभिन्नहृदयोऽसि त्वं मे। निवेदयिष्यामि सर्वं ते मार्गे। अथ केन मार्गेण गन्तव्यं भूलोके ? विहायसा किंवा रथ्यया ?

अरुणः अन्तरिक्षे यानेन किञ्चित्कालं तु गन्तव्यमेव भूवमवतरितुम्। तत्र च न रथ्या सार्वत्रिकी। कथन्नैवाश्वावारुह्यैव ?

सूर्यः एवमेव। त्वर्यताम् [निष्क्रान्तौ]

पट-परिवर्तनम्

[शष्पशाद्वले वनेऽदृश्या अश्वाश्चरन्तः प्रतीयन्ते। सूर्यारुणौ स्थितावेकपार्श्वेऽवधानेन तान् पश्यतः]

सूर्यः अरुण ! मनो मे विश्वसित्यत्रैव वडवारूपिणी सरण्यूः स्यादिति। अहमश्वरूपं विधार्य तत्रैव गच्छामि। मयि हेषत्युच्चैस्त्वया-वगन्तव्यं सरण्यूः प्राप्तेति निवर्तनीयमेकाकिना मामत्रैव विहाय। प्रतीक्षणीयौ चावां त्रिंशत्तमे दिने छायाधिष्ठितायां पुर्यां कोणा-र्काख्ये स्थाने।

अरुणः करिष्यामि यथा तेऽभिमतम्।

[एकपार्श्वतः सूर्योऽपरपार्श्वतोऽरुणश्च निष्क्रान्तौ। बहिर्भा-गादाव्रजतोरश्वयोरेक उच्चैर्हेषति।]

[अत्र कूटशरीरावश्वौ, चालयितुं शक्येते]

अश्वसूर्यः मां विहाय क्वात्र वने परिभ्रमसि ? अपि न स्मरसि स्वापत्ये ?

वडवा (सरण्यूः) विभेम्यहं त्वत्तः। तदेव कारणं स्मरन्त्यपि भृशं स्वसन्ततिं परित्यज्यात्र वने भ्रमामि।

सूर्यः अपूर्णयौवनया सहोद्वाहोऽपरिपक्वावस्थायां प्रथमप्रसूनागम एव फलोद्गमश्च ते मनसि भयमुत्पादयतोऽद्यापि, परं सकृज्जननीत्वमा-पन्नया त्वया न भेतव्यमधुना गार्हस्थ्यधर्माचरणात्।

सरण्यूः मत्सख्योऽपीत्थं भणन्ति, तथापि न समुत्सहते मे मनः पुनर्मिलनाय। त्वत्सङ्गसंलापोऽपि सन्तापप्रदो मे।

सूर्यः तक्रं स्पृशति फूत्कृत्य दग्धो दुग्धेन चैकदा ! हन्त ! असम-विवाहस्य परिणतिरेषा ! कथं मया ते भयमपहार्यम् ! विधिनाऽहं त्वयि सन्ततिचतुष्टयं जनयितुं नियुक्तोऽस्मि प्रिये !

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरण्यूः क्षम्यताम्। न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम्। अपसरत्वस्मात्स्थानात्।

सूर्यः विधेर्विधानं न कोऽप्यतिक्रमितुं समर्थः। त्वं सूर्याद् बिभेषि, तत्तेजोऽधिक्यात्। अश्वरूपोऽहं सर्वात्मना त्वादृशो जीवामि विधेराज्ञापालनार्थम्।

सरण्यूः [किञ्चिद्विचार्य] तर्हि विधि-विधानं पालयितुमहं त्वदोजो योगपद्धतिमाकलय्य नासारन्ध्रेण गर्भं प्रापयिष्यामि। नाधिकमतः।

सूर्यः एवमस्तु [अश्वरूपः सूर्यो वडवारूपिणी सरण्यूः परस्परं लिहन्तौ हेषतः]

पट-परिवर्तनम्

[वडवारूपिणी सरण्यूः स्वरूपावस्थितः सूर्यश्चालपन्तौ मार्गमध्यासाते]

सरण्यूः किमेतत्स्वामिन्! भवांस्तु प्रकृतरूपमवस्थितोऽस्ति। माञ्च वडवारूपमापन्नामेव नयति?

सूर्यः यथासमयं स्वरूपमवस्थास्यसि त्वमपि। आवामस्मादुत्तरापथाद्दक्षिणावर्तं प्रस्थितौ स्वः। उभावेवाश्वौ चेत्स्वामिरहितौ मत्वा कश्चिदपहर्तुं न प्रयतेतेति ते स्वामी प्रकृतरूपमवस्थितोऽहम्।

सरण्यूः अहमपि वडवारूपं त्यजेयम्.....।

सूर्यः बालयोर्मनसि सरण्यूद्वयविषयिणी विसङ्गतिर्माभूदिति वडवारूपेणैव त्वया तत्र गन्तव्यम्।

सरण्यूः अवगतं स्वामी मत्पृष्ठस्थो मां धावयितुमिच्छतीति। किं भविष्यति मे भारद्वयं वहन्त्या इत्यपि विचारितम्?

सूर्यः कोऽपरो मदन्यो भारः?

सरण्यूः जनिष्यमाणा ते प्रजा।

सूर्यः [स्मयमानः] कियान् भारो मासादप्यूनस्य डिम्भस्य!

सरण्यूः अननुभूतविषयाः पुरुषा इत्थमेव भणन्ति।
अस्तु, मत्पृष्ठमारोहतु। अहन्त्वामचिरादेव दक्षिणावर्तं नयामि। तत्र छायान्वेषणं युष्मत्कार्यम्।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्यः　मयादिष्टा सा सागरतटस्थां पुरीं गन्तुम्। अरुणश्चादिष्टश्छायावासं दृष्ट्वा नियतदिने तत्रावां प्रतीक्षितुं यत्रार्कस्तथा कोणस्थो भवति यथास्योदयास्तभागौ प्रतीयेते अभिन्नौ।

सरण्यूः　कथमहं तेषां समक्षं गच्छेयं वडवा-रूपा। जिह्रेमि तथा गन्तुम्।

सूर्यः　न ते किञ्चिल्लज्जाजनकं मदुक्तमनुष्ठीयते चेत्। अस्त्वहमारोहामि त्वत्पृष्ठम् [आरोहणमुद्रापरे सूर्ये जवनिका पतति]

स्थानम्—समुद्रतटस्था पुरी

[एकपार्श्वतोऽरुणोऽपरतो वडवाप्रग्रहकरः सूर्यश्च प्रविशतः]

सूर्यः　अरुण! अपि दृष्टश्छायावासः?

अरुणः　ओम्, समीप एव।

सूर्यः　चलेव?

अरुणः　देवी सरण्यूर्वडवा....!

सूर्यः　आम्, वडवैव (सर्वे नेपथ्यरङ्गमञ्चौ परिक्रामन्ति)

अरुणः　(रङ्गमञ्चं पारयन्) नाद्यापि देवी स्वरूपं धारयिष्यति?

सूर्यः　नाद्य, श्वः प्रत्यूषे यदाहं सरण्यूभूतया छायया सहोत्तरापथं प्रयामि तदा।

अरुणः　अवगतम्। तदा वडवाभेषमपहाय देवी सरण्यूः स्वबालौ लालयिष्यति।

सूर्यः　एवमेव।

अरुणः　क आदेशो मदर्थम्?

सूर्यः　छायया सह मत्प्रयाणवेलायाः पूर्वमेव त्वयाग्रेऽग्रे गन्तव्यमुत्तरापथम्।

अरुणः　सम्प्राप्ता वयं छायावासस्थानम्। आवृतं कपाटमुद्घाटयाम्यहम्।

[अरुणः कपाटमुद्घाटनं नाटयति। सरण्यूरूपिणी छाया रङ्गमञ्चमागता स्वागतं व्याहरति। अरुणो निष्क्रामति सवडवः]

छाया　न लब्धा क्वापि सा?

सूर्यः　लब्धा, सहैवागता।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छाया क्वास्ति सा ?

सूर्यः न दृष्टा वडवा त्वया ?

छाया सरण्यूः....वडवा सैव वडवा [परिहसन्ती] अप्यत्ति तृणानि सा ?

सूर्यः चणकानपि चर्वयति [छाया-सूर्यौ हसतः]

छाया कीदृशो नूतनोऽनुभवः !

सूर्यः तुभ्यं रोचते ?

छाया भृशम् । वडवा द्रुतगामिनी !

सूर्यः (प्रहसन्) धाव त्वमपि सरण्यूरिव वडवा भूत्वा किंवा वडवावत् । तव दौहृदेच्छापि पूरणीया ।

छाया परं नाहं त्वां त्यक्ष्यामि ।

सूर्यः मा त्याक्षीः (व्यंग्येन) त्वामारूढेनैव मया गन्तव्यम् ।

छाया गर्भस्थं तवापत्यं त्वाञ्च वहन्ती यद्यहं श्रान्ता स्याम्....।

सूर्यः तर्हि कस्यचित्तरोरधः श्रमोऽपहार्यः । अहञ्च तच्छिखरारूढस्त्वां रक्षयिष्यामि । क्व स्तो बालौ ?

छाया दिष्ट्या सुप्तौ तावद्य समयात्पूर्वमेव ।

सूर्यः यद्येवं तत्स्वरूपमवस्थिता सरण्यूरधुनैवात्र सम्प्राप्ता स्यात् ।

छाया [ सरण्यूमानेतुं बहिर्गमनोत्सुका ] नाहमधुनैव वडवा भूत्वा सरण्यूस्थाने बाध्येय ।

सूर्यः नाधुना, न च श्व एव । न बाधयिष्यामस्त्वाम् । परिवर्तितासु स्थितिषु नैतदपेक्षते । आवां श्वः प्रातः काले बालयोः सुप्तयोरेव स्वरथयानेन व्रजिष्यावः; तथापि स्वदौहृदपूर्त्यर्थं प्रतिवेशिनाञ्च प्रत्ययार्थं श्रावयितव्यं हयहेषणमतिप्रत्यूषे किञ्चित्कालम् ।

[ छाया निष्क्रामति । सूर्यश्छाया-गृहं निरीक्षमाणः कालं यापयति । छाया सरण्यूदेव्या सह सम्प्राप्नोति]

स्वागतम्, स्वागतम् । साम्प्रतं युवयोर्न काचिच्चर्वयति चणकान् [ सरण्यूं निरीक्ष्य साभिनयम् ] वयं सर्वे भोक्ष्यामहे [ सर्वे प्रहृष्टाः समकालं वदन्ति] मिष्ठाश्नम् !

पटाक्षेपः

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[नेपथ्ये श्रूयते] आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥

उद्घोषकः— सूतेऽश्विनी कुमारौ सा सरण्यूर्वडवाऽथवा ।
नासत्यावपि तौ ख्यातौ देवानाञ्च भिषग्वरौ ॥
जायते च मनुः काले छायाया उत्तरापथे ।
जनको मानवानां यो धर्माणाञ्च निदेशकः ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# सामयिकी

स्थानम्—संयमनी ( यमराज नगरी )

समयः—प्रथमः प्रहरो रजन्याः ।

[ यमो यम्या विमुखः स्थितो वार्तालापपरो दृश्यते। भित्तिषु "सत्यं वद, धर्मं चर" इति स्थूलाक्षरेषु लिखिते वाक्ये पठितुं शक्येते दूरतोऽपि । ]

यमः नैव, नैव कदाचिदपि । आवयोर्मैनसम्पर्कोऽवैधो धर्माननुकूलः ।

यमी कथम् ? अप्यहं स्त्री नैव ? नासि किं त्वं पुमान् ?

यमः सत्यं, भिन्नलिङ्गिनावावाम् । किन्तु ... ....

यमी किन्तु किम् ?

यमः आवां भ्रातरौ स्वः । त्वं मे भगिनी, अहञ्च त्वत्सहोदर्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ।

यमी त्वया मेऽधुना कामतापोऽपहार्यः ॥

सुगन्धिः समीरः समोदः शशाङ्कः ।
नवं देवयुग्मं विविक्तः प्रदेशः ।
प्रबुद्धो मनोजो मनोज्ञा च वेला ।
सुतोत्पादनान्मद्विधिश्चोपकार्यः ।
त्वया मेऽधुना कामतापोऽपहार्यः ॥

यमः रविर्नौ पिता विश्वभर्ता वरेण्यः
अनन्या च माता सरण्यूः शरण्या ।
स्वसः ! सोदरो नाग्रजो नानुजस्ते
अगम्यासि, नाहं तदर्थं विचार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

यमी मनुष्येषु वर्ज्योऽस्ति भोगो भगिन्याः
परं देवयोनौ स्वसा यभ्यतेऽतः
मनोऽस्यां युवत्यां निधायात्मतृप्त्यै;
सुभर्त्रेव भोगेन कायोऽवगाह्यः ।
त्वया मेऽधुना कामतापोऽपहार्यः ॥



CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमः न मिथ्या ब्रुवेऽहं सदा सत्यवक्ता ।
पिता व्योम्नि साक्षी जनन्या सहैव ।
कृतो नैव जाने कदाचार ईदृक् ।
स्वदेहस्त्वयास्माच्च पापान्निवार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

यमी विधी रूपस्रष्टा तु कार्यं ह्यकार्यम्
अवेत्योदरेऽकारयत् सङ्गमं नौ ।
न पृथ्वीं दिवं वा विना कश्चिदन्यः
प्रपश्यत्यशङ्केन देहः प्रसाद्यः ।
त्वया मेऽधुना कामतापोऽपसार्यः ॥

यमः न देवाः स्वचक्षूंषि सम्मीलयन्ति
शुभं वाशुभं कर्म पश्यन्ति कर्तुः ।
रथेनेव नेमिश्चलान्येन साकम्,
पुनर्नैव वाचा त्वयाऽहं प्रहार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

अहोरात्रमाकल्पिता मे हि भागाः,
ममाभीप्सितानाप्नुयात्तान्यथावत् ।
रवेस्तेजसा दीप्तिमानस्तु भालः ।
वरेण्यो मया नैष पन्था अनार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

स्वसा भ्रातरं कामयानोत्तरेऽस्तु
युगे नाम नास्मिस्तु सृष्टेः प्रभाते ।
समाश्लिष्य चान्यं पतिं भोगहेतोः ।
त्वया सोदरेणाभिषङ्गो न कार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

यमी अहन्ते स्वसा सोदरस्त्वं मदीयः ।
हरेद् भ्रातुरार्तिं न या सा स्वसा किम् !
स किं सोदरो यः स्वसुर्नोपकुर्यात् !
ममायं विकारस्त्वयैवोपचार्यः ।
त्वया मेऽधुना कामतापोऽपसार्यः ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमः न काङ्क्षे सकामाङ्गसङ्गं त्वयाहम्
स्वसुर्देहलिप्सा हि पापं जघन्यम् ।
वृणीष्वापरं कञ्चिदात्मानुरूपम्
परं मत् सदा पापसङ्गोऽपवार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

यमी न जाने त्वदीयं मनः कीदृशं यत्
लतेव द्रुमं काचिदाश्लेक्ष्यति त्वाम् ।
परा भन्त्स्यति त्वा वरत्रा यथाश्वम्
मया साध्यरोगः कथं वा निकार्यः ।
त्वया मेऽधुना कामतापोऽपहार्यः ॥

यमः वृणीष्वापरं गच्छ, दूरं त्यजास्मान्,
हरामुष्य चित्तं, शुभञ्चावयोः स्यात् ।
पुनर्मा वदीर्वाचमेतामवद्याम्,
मदर्थं त्वया नैव जालः प्रसार्यः ।
अमर्यादितः काम एषोऽपसार्यः ॥

यमी प्रकृतिः स्त्रीपुंसौ जनयति, नतु भ्रातरं भगिनीञ्च । आवयोः प्रथम एकाकी द्वन्द्वः प्रकृत्या दाम्पत्यार्थमेव प्रतीयते । कालान्तरे जातेषु बहुषु स्त्रीपुरुषेषु सोदरो द्वन्द्वः समाजस्वास्थ्याय भगिनीभ्रातृ-सम्बन्धेन ज्ञास्यते । पशुपक्षिषु तु भविष्यत्कालेऽपि जननपरायणौ स्त्रीपुंसावेवोत्पत्स्येते ।

यमः मन्ये सृष्टिविकासार्थमावामुत्पन्नौ । प्रतीक्षावहै यावदन्येऽपि स्त्री-पुरुषा उद्भवन्ति । तदा कश्चित्पुरुषस्त्वद्भर्ता काचित्स्त्री च मद्भार्या भविष्यतः प्रजातन्तु-वितानाय ।

यमी यदि विधिरपरं द्वन्द्वं निर्मापयति, सोऽप्यावयोः कृतेऽग्राह्य एव पित्रोरभिन्नत्वाच्चेतनसृष्टा अस्मत्पितुः सूर्यस्यात्मरूपत्वाद्वा सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति श्रुति-प्रामाण्यात् । एवं सृष्टि-विकासक्रमोऽवरुध्यत एव ।

यमः मा चलत् सृष्टिक्रमः । नाहं समानपितुः स्त्रीसन्ततिमुद्वोढुं शक्नोमि । इह जन्मनि जन्मान्तरेष्वपि च कौमारजीवनं यापयिष्यामि ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमी यमलावावां गर्भावस्थायां यद् विवस्त्रावेव सहैवावसाव, किं सिद्धं त्यनेन भवतां मतेन ?

यमः अविज्ञातसम्पर्काय नावामुत्तरदायिनौ । अप्रबुद्धयोर्जातः सम्बन्धो न दोषावहः ।

यमी जानताजानता विहितमनौचित्यं दोषावहमित्याचारसंहितानुशासनम् ।

यमः अचेतनतया कृतं पापमुपेक्षणीयमिति व्यवहारसिद्धम् ।

यमी त्वां सोमं पाययित्वा निश्चेतनं विदधामि ।

[ चषकं सोमेनापूर्य यमाधरमुपनयति । यमो हस्तेन वारयति ]

यमः अलं कुतर्केण ।

यमी जातावेव वियुक्तावावां युवावस्थायां पुनर्मिलितावभिष्यावश्चेत् किमकरिष्यः प्रणयप्रार्थितो मया त्वम् ?

यमः अजानता विहितं स्खलनं कथं मण्डयसि सिद्धान्तैः ?

यमी नाहं किञ्चित्करोमि । प्रस्फुटति सत्यमनायासम् । कदाचिदितिहासज्ञानेन तदवरुध्यते, परिष्क्रियते वा ।

यमः कामोऽपरिचयं वृणुते । तस्मान्मयापि त्वत्प्रणयप्रस्तावः स्वीकार्योऽभविष्यत्तदा । किञ्चावां तु चिरपरिचितौ ।

यमी किं परिचितयोः कामसम्पर्को न कदाचिदपि सम्भवति ?

यमः सम्भवति, हठात्कारितः स्याद्यदि केनचिदन्येन परिष्ठितिवशात्, किञ्चैवंभूतः सम्पर्को न सिद्धयति प्रेरकः । सहोदरया भगिन्या कामसम्पर्कस्तु भविष्यत्कालेऽपि न भविष्यतीति मे दृढा मतिः ।

यमी दुराशैवेयं ते धर्मात्मन् !

यमः अहं योगबलेन पूर्वं मन्वन्तरं त्वत्प्रयत्यार्थमुपस्थापयामि [मुचुटीं वादयति ] ओह ! मार्कण्डेयाश्रमे युवक एक एका युवतिश्च परस्परमालपन्तौ भ्रमतः । आत्मानं गोपयित्वा पश्याव किं तौ कथयत आचरतश्च [ मञ्चस्यैकपार्श्वेऽदृश्यौ भूत्वा पश्यतः, प्रविशतोऽपरपार्श्वतो वर्तुलावृन्दारकौ ]

वर्तुला स्नातकोत्तरदीक्षायामावयोः पूर्णो हायनो जातः ।

वृन्दारकः आम्, सम्प्रति तु प्रत्यावर्तनस्य कालः समायातः । अस्यामेव श्रावण्यां संपत्स्यतेऽस्माकं दीक्षासमारोहः । ततोऽहं पितृपादानां दर्शनार्थं शीघ्रमेव प्रयास्यामि गृहम् ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्तुला अथ त्वं गार्हस्थ्यं चरिष्यसि? [अवरुद्धा नखेन धरित्रीं लिखति]

वृन्दारकः गार्हस्थ्यम् ! ओम्, इत्थमेव भणन्ति पितृपादाः [अवरुद्धो नृताननां वर्तुलां बाढं पश्यति]

वर्तुला मां त्यक्त्वा व्रजिष्यसि ? [वेपथुमतीव नाटयति]

वृन्दारकः यद्यहं त्वत्पितृपादान् पाणिं ते याचे.....।

वर्तुला वयःसन्धिस्था कदाचिदेव वरणाधिकारिणी मन्यते जनैः । परिणयोत्सवे पठितव्यानि मन्त्राण्यपि नाद्यावधि कण्ठस्थीकृतानि मया । तव पितृपादास्त्वविलम्बमेव त्वदुद्वाहं कर्तुमेष्यन्ति ।

वृन्दारकः मानयिष्यामि स्वपितरं त्वत्पिता मन्यते चेत् । आशासे सोऽपि मंस्यत एव, यतः कन्याया यौवनं पितृभ्यां महच्चिन्ताजनकम् । त्वञ्चाधुना समासन्नयौवना पूर्णतः प्रणयार्हा । लतासु प्रसूनानाम् एव नाह्वयति भ्रमरकुलम् ?

वर्तुला किञ्चोपवनपतिर्लतायाः फलोत्पादनक्षमतामपि तोलयति । अत एवादौ जातानि कुड्मलान्यवचिनोति । प्रहृष्टयैव मया भाव्यं ममपितृपादा मन्यन्ते चेत् ।

वृन्दारकः कामं न मानन्त्वस्मत्पितरः, मनोभावान्ते विज्ञायाहं न कामपीतरां पत्नीत्वेन ग्रहीष्यामि । गतवर्षे दीक्षापीठं प्रविष्ट एवाहं यदा त्वां प्रथममपश्यम्, मनसीत्थं सञ्जातं यत्प्राप्तुं त्वामहं बहुषु पूर्वजन्मसु व्याकुल आसम् ।

वर्तुला संकीर्णवीथ्यां चलन्ती त्वच्छरीरसंस्पर्शादहं तथैवोद्दीप्ता जाता यथा प्रज्वलितदीपं संस्पृश्य स्नेहसिक्ता काचिदन्यवर्तिका ।

वृन्दारकः कुलादिवृत्तमविज्ञायैवावयोर्हृदये मिलिते । किं भविष्यति तदनुकूलं भवेच्चेत्.....।

वर्तुला तव तुष्ट्यै यथाविदितं सर्वं निवेदयितुं न मे काचिदापत्तिः, किन्तु को लाभो जलं पीत्वाऽऽहरकान्वेषणैः ?

वृन्दारकः ईदृश्येव प्रेम्णो रीतिः । धन्योऽस्मि वर्तुले ! एकत्वमापन्नावावाम् ।

वर्तुला अभिन्नात्मानौ । वियुक्तावेकादश, मिलितावेकएव । [वार्तापरावेव निष्क्रामतः प्रविशतश्च विवृताभद्रबाहू]

भद्रबाहुः प्रतीयसे साम्प्रतं शैलनदीव भङ्गिमवर्तुला वेगवती च ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवृता त्वमपि कामातुरो वृषभ इव लगसि ।

भद्रबाहुः अप्यभद्रमाचरितं मया किञ्चिद्बलात् ?

विवृता नाहमसमर्था पाठं पाठयितुं त्वामभद्रमाचरिते त्वयि ।

भद्रबाहुः को नाम समयं नङ्क्ष्यति त्वां जिघ्रितुम् ?

विवृता चल चल बलीवर्द ! कामिनीमनुधावसि ।

भद्रबाहुः अलमलं कुख्यातवृत्ते ! जानाम्यहं त्वाम् ! परश्वः पितृव्य आगत्या-कथयत्.....

विवृता किमकथयत् ?

भद्रबाहुः ब्रूतेऽसौ मन्ये चेदहं, ते पाणिग्रहणाय त्वत्पितरं स प्रार्थयिष्तीति ।

विवृता अरे ! काचिद् गर्दभ्येव त्वां वरिष्यति ।

भद्रबाहुः किं मया स्वीकृतम् ? त्वाम्...अहं परिणेष्यामि ? मयोक्ताः पितृव्य-पादा न रोचते मे ते पाणिग्रहणमिति ।

विवृता अहमपि स्वपितरं निवेदयिष्यामि न मे रोचते ते पत्नीत्वमिति

[ विवदन्तौ निष्क्रामतः ]

[उद्घाटिते मध्यवर्तिपट आचार्यो मार्कण्डेय आसनासीनो दृश्यते । पुरस्तादेव दीक्षिता युवतयो युवानश्चासनस्था दृश्यन्ते । आचार्यः क्रमश एकं युवकं युवतिञ्चैकामाकार-यति] ।

मार्कण्डेयः [ एकं युग्मं प्रति ] गृहाणेदं नारिकेलम् । गच्छ दाम्पत्यजीवनं प्रारब्धुम् ।

युगलः [नारिकेलं गृहीत्वा प्रसन्नमुद्रया] शिरसा वहामि श्रीमतामा-देशम् । [ मार्कण्डेयो द्वित्रायुगलान्याहूय दाम्पत्यजीवनं यापयितुमादिशति नारिकेलञ्च ददाति]

मार्कण्डेयः [अपरं युगलम्] पीठपर्यवेक्षकेणाहं संसूचितो यद्युवां मामकीना-दादेशात्पूर्वमेव गान्धर्वेण सम्बद्धौ । आश्रमनियमोल्लङ्घनमपि क्षन्तव्यं क्षत्रियेषु गान्धर्वविवाहस्य परिचलनात् ।

[भद्रबाहुर्विवृता च प्रविशतः]

मार्कण्डेयः आगच्छ वत्स ! कैषा ? भार्यात्वाभिलाषिणी वा सखीमात्रम् ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भद्रबाहुः सखीमात्रम् ।

मार्कण्डेयः कथन्नैनां भार्यां विदधासि ?

विवृता क्षन्तव्याहमाचार्य ! नाहं वृणे भद्रबाहुम् ।

मार्कण्डेयः [भद्रबाहुम्] भद्र ! कस्ते विचारः ?

भद्रबाहुः अहमपि नेच्छामीमां परिणेतुम् ।

मार्कण्डेयः मया श्रुतं युवां पञ्चदशवर्षेभ्यः सहैव वसथः । का हानिर्यद्युवयोर्विवाहो भवेत् ।

विवृता आर्य ! एतमहमपेक्षितादधिकं जानामि ।

भद्रबाहुः मयैषा बाल्ये विवस्त्रापि दृष्टा । आवयोः शौचादिक्रिया अपि सहैव समपद्यन्त । न किञ्चिदपि गुह्यमस्मत्कृते । तस्माज्जात आकर्षणाभावः । अथाधुना कीदृशो विवाहोऽनाकृष्टयोः ।

मार्कण्डेयः सम्यगुक्तं त्वया । प्रतीक्षेथां तावदपरप्रकोष्ठे । युष्मदर्थेऽन्विष्याम्यन्यं साहचर्यम् ।

[सम्प्राप्तौ वर्तुलावृन्दारकश्च]

मार्कण्डेयः अपीच्छथो युवां मिथो दाम्पत्यम् ?

उभौ आम्, आम्, आचार्य ?

वृन्दारकः गतवर्षे कक्षां प्रविष्टावेव विचारयितुमारब्धौ तदर्थम् ।

वर्तुला ओम् भगवन् ! आदिष्टव्यावावाम् दाम्पत्यसाधनाय ।

[वृन्दारक-वर्तुलयोः पितरौ सम्प्राप्तौ ]

वृन्दारकपिता मा, मा, आचार्य ! नैषो विवाहः सम्पादयितुं शक्यते ।

मार्कण्डेयः कथन्न ? द्वावेव युवावस्थामधिगतौ परस्परमभिलषतः ।

वर्तुलापिता वृन्दारको वर्तुलाया अग्रजोऽस्ति ।

मार्कण्डेयः कथम् ?

पिता श्रेष्ठी सुदासः सौहार्दवशीभूतः सद्योजातां स्वपुत्रीं वर्तुलां निरपत्याय मह्यमदात् । तदा सुदासपुत्रो वृन्दारकोऽसौ द्विवर्षदेशीय एवासीत् । एवमस्मत्पालिता पुत्री वर्तुला वस्तुतो भगिन्यस्ति वृन्दारकस्य । नेदं रहस्यं तावद्यावधि जानीतः ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

**मार्कण्डेयः** स्त्रीपुरुषाः प्रकृत्या परस्परं कामयन्ते। यौवनारम्भात्पूर्वमेव तेषां पारस्परिकः सम्पर्को विवाहमार्गे दुर्लङ्घ्या बाधास्ति। सम्भवत इदमेव कारणं यद् भ्रातास्वस्रो विवाहो न सम्पद्यते। वृन्दारको वर्तुला च यौवनारम्भे मिलितौ। तत्, जन्मना भ्रातृभगिनीरूपावपि परस्परं कामयेतेऽज्ञानवशात्। अत्राभिभावकानामापत्तिः परम्परानुमोदिता। विवाहोऽयं समाजस्वीकृतिविरहितत्वान्नार्हति भवितुमिति युवाभ्यामपरं जीवनमित्रमन्वेषणीयम् [ मध्यवर्तिनी जवनिका पात्यते। यमीयमौ प्रविशतः]

**यमः** अपि श्रुतस्त्वया महर्षिमार्कण्डेयनिर्णयः ?

**यमी** अनेन भवति भवद्भावपुष्टिः, किञ्च सञ्जातं यन्मे मनसि, किमस्ति तस्य समाधानम् ? आवयोर्द्वयोः पिता सूर्यो माता च सरण्यूरिति ज्ञातन्त्या अपि मे मनसि कथं जातः प्रेमोदयः ? कथन्नैवापास्तः परिचयाधिक्येऽपि ?

**यमः** अपवादमेव जानीहि स्वहृदयम्। अपवादैर्नाकल्यन्ते सिद्धान्ताः।

**यमी** नैवापवादः। हृदयस्योद्घाटनमिदम्। त्वत्प्रयास आदर्शरूप एव। कथमेतद्भण्यते ?

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

पश्य च दिव्य-चक्षुषा किं भणिष्यन्ति स्त्रीपुरुषयोर्मनोविषये मनोविश्लेषणनाम्न्यो यथार्थवादिन्यो गवेषणा अग्रे। यच्च निर्णीतं परिचयाधिक्ये प्रणयभावशान्तिरिति ? तदपि पुरुषमनोव्याख्यास्ति। स्त्रीमनसि तु क्वापि परिचयाद् भावशबलता प्रणयभावस्य तीव्रता वा दृश्यते। भूतपूर्वमन्वन्तरेषु द्वापरे गोप्यः प्राधान्येन साहचर्याधिक्यादेव श्रीकृष्णमन्वरज्यन्।

**यमः** यान् तर्कानाश्रित्य त्वमद्य भ्रातृभगिन्योर्यौनसम्बन्धान् समर्थयसि, तानेवोद्धृत्य कश्चिदन्यः काचिदन्या वा मातापुत्रयोः पितापुत्र्योश्च सम्बन्धेषु कालुष्यमुत्पादयिष्यति। यत्पशुषु युज्यते तन्मनुष्येष्वपि दर्शयिष्यति। पापमिदम्। स्त्रीपुरुषेषु कामस्थानं निर्धारयितुमस्मद्वैमात्रेयो धर्मज्ञो मनुः स्मृतिं रचयत्यधुना। तदनुसारमेव सर्वैः काम-सम्पर्काः स्थापनीयाः। कामः पुरुषार्थचतुष्टय एकोऽस्ति। दोषचतुष्टयेऽप्येकः। तस्मात्सिद्ध्यति वर्जनीयस्तस्यातिचार इति।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमी त्वं सदा किं भवत्वित्येव भणसि । विस्मरसि च किमस्तीति ।

यमः सूर्यसुतो धर्मराजोऽहमादर्शमनुमोदयामि ।

यमी सूर्यसुताहं यमी यथार्थं दर्शयामि ।

यमः पतितासि त्वम् !

यमी पाषण्डोऽसि त्वम्, पाषाणोऽपि ।

यमः पाषाणोऽप्यहं सुष्ठिरः । त्वां पापामहं शपामि यत्त्वं प्रवाहिणी भूत्वा निरन्तरमधोऽधो यायाः ।

यमी भ्रातः ! कियान्निष्ठुरोऽसि !

यमः शासकस्य निष्ठुरतापि जगतो हितायैव सिद्ध्यति । मच्छापेन त्वदवपातोऽपि संदेशपरकत्वाद् भूयान्मङ्गलाय शस्यसमृद्ध्यै च भूलोकस्य ।।

पटाक्षेपः

[ नेपथ्ये प्रवहन्त्या यमुनानद्या ध्वनिः श्रूयते ]

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः
कृणवन्नजामि । उप बर्बृहि वृषभाय
बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ।।
ऋग्वेद १०-१-१०-१०

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# उत्कचः

## स्थानम्—अमरावती [ इन्द्रपुरी ]

[ देवसभायां सिंहासनस्थो देवेन्द्रोऽप्सरोनटनर्तकगायकैः परिवृतो नृत्यगीतादिकला आस्वादयन् दृश्यते। समागच्छन्तं गुरुवर्यं बृहस्पतिं दृष्ट्वा संकेतेन कलाकारान् विदायं ददाति। आसनादुत्थाय च बृहस्पतेः स्वागतार्थमग्रे सरति ]

इन्द्रः — प्रणमामि देवगुरो !

बृहस्पतिः — स्वस्त्यस्तु।

इन्द्रः — केनादेशेनानुग्राह्योऽयं जनः ?

बृहस्पतिः — तस्करैर्न जाने क्व नीता मे गावः, यासां विना दुग्धाभावादसम्पन्नयज्ञादिक्रियोऽहं भृशं दुनोमि।

इन्द्रः [सामर्षः] — शासति मयि तस्करा गा अपाहरन् ? क्षम्यतां गुरुदेव ! कालमपि जित्वाहमचिरादेवामृतस्यन्दिनीस्ता गा उपस्थापयिष्यामि।

बृहस्पतिः — आयुष्मन् ! गवेषणीयं प्रथमं के ते चौराः, कुत आयाताः, क्व गता इति। एतदर्थं दिव्यचक्षुषोऽन्तेवासिनो मयापि सम्प्रेषिताः। नाधुना लब्धं किञ्चिद्विश्वसनीयं स्रोतः।

इन्द्रः — देवशुनी सरमा साधयिष्यति सर्वम् [ सचिवमभिलक्ष्य ] सरमा गोष्ठं घ्रात्वा गोतस्करणां गवां च साम्प्रतिकीं स्थितिं ज्ञातुं प्रयात्वविलम्बमेव। रसापारवासिनः पणयो गवामपहरणमाचरन्तीति सर्वविदितम्। गवां दुग्धं तेभ्यस्तथा न रोचते यथा तासामालम्भनम्।

सचिवः — किं सरमयैकाकिन्या गन्तव्यमुताहो रक्षका अपि तामनुसरेयुः।

इन्द्रः — स्थानात्स्थानान्तरं जिघ्रन्ती सरमा पश्चिमां दिशं धावति चेद्रक्षका अपि।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सचिवः यथाज्ञापयति देवः [ इत्युक्त्वा निष्क्रान्तः ]

पट—परिवर्तनम्

[ त्रिभी रक्षकैरनुसृता सरमा गोतस्करपद्धतिं जिघ्रन्ती रङ्गमञ्चं पुनः पुनः पारयन्ती दृश्यते । मध्यवर्तिनी जवनिकोद्घाट्यते, येन पीठशीर्षयोर्मध्ये नियोजितं शाटिकादिभिर्निर्मितं नदीदृश्यं दृष्टिपथमायाति, यत्रागत्य गवेषणामण्डली विचारयत्यवरुद्धा ]

सरमा नद्येषा रसा नाम्नी विशाला विस्तीर्णा च । अपि शक्यते युष्माभिस्तरितुम् ?

[ सर्वे शिरश्चालनेनासामर्थ्यं दर्शयन्ति ]

सरमा तस्कराणां सर्राणमन्वेष्टुं रसापारगमनमत्यावश्यकम् । [ स्थानं दर्शयन्ती ] एतत्पर्यन्तं तेषां गन्धविशेषो लभ्यते । अस्मात्स्थानादेव तैर्महानदी स्यादतिक्रान्ता । अतोऽहं नदीमुत्तीर्य पारं गत्वा च तानन्वेषामि । युष्माभिरत्रैव प्रतीक्षणीयाहम् ।

देवपुरुषाः (सैनिकाः) आम्, आम् । विश्रब्धा गच्छ ।

[ सरमा नद्याभासिन्याः शाटिकायाः पृष्ठभागे तरन्तीव दृश्यते ]

पट–परिवर्तनम्

[ पणिगणाध्यक्षः कुन्तहस्तैर्गणनायकैः साकमुपत्यकायां पाषाणशिलासीनो दृश्यते । देवदूती सरमा प्रविशति ]

सरमा कीदृशा मन्दबुद्धयो गोतस्करा यूयम् ! विचारयथोऽकुतोभया जाता अत्रागत्य ? विस्मृतं भवद्भिर्यद् बुद्धिमतो बाहू सुदीर्घौ भवतः । न कश्चिदपराधी ताभ्यामगृहीतस्तिष्ठति ।

पणिगणाध्यक्षः [ परिहसन् ] दुरासदं रसापारमागता सरमे ! कथम् ? स्थानात्स्थानान्तरं घ्रात्वा ज्ञातुमिच्छसि किं वद ।

आपद्ग्रस्ते कथं मार्गे ते व्यतीतमहर्निशम् ?
रसाजलौघं सरमे ! तरितुं किं त्वया कृतम् ?

किं जिघ्रसीत्थं परितो भ्रमन्ती बुभुक्षितान्वेषसि मांसपिण्डम् ?
स्वर्गेऽप्यनासाद्य सुखाद्यमिष्टं गृहीतमन्तेऽटनमेतदर्थम् ?

सरमा जिघ्राम्यहं किं किमितीहते यो ज्ञातुं गुरोर्गा अपहृत्य धृष्टः
ढुण्ढामि गर्तं पविरिन्द्रमुक्तो रसातलं तं प्रहिणोतु यस्मात् ॥

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पणिगणाध्यक्षः स्रष्टा गवां नैव गुरुर्न चेन्द्रो यस्यासि दूती स कियानबुद्धः
गावो धनं तस्य जनस्य यस्य गोष्ठेषु दुह्यन्त इमा धरावत् ॥

सरमा हन्त्येव शत्रून्मघवा ह्यवध्यो रोद्धुं न शक्यो रसया वहन्त्या ।
देवाः समागत्य विनाश्य युष्मान्नेष्यन्ति धेनूंश्च गुरोरवश्यम् ॥

प० ग०अ० दूरागता वेत्सि न शूरतां नो निनीषसीत्थं धनमस्मदीयम् ।
युद्धं विना नो पणयस्त्यजन्ति स्वायत्तगोवित्तमिति स्वनीतिः ॥

सरमा सैन्यं न सिद्धं न वपुर्बलिष्ठं न वश्च मार्गाः सरलाः प्रसर्तुम्
देवेन्द्रसेनानुगतो गुरुस्तु भोक्तुं सुखं त्यक्ष्यति नैव युष्मान् ॥

प०ग०अ० गोवाजिरायोऽचलकन्दरासु निक्षिप्य रक्षन्ति पणिप्रवीराः
कामं चिरं बुक्कतु देवदूती गोरम्भणं किन्तु न रोत्स्यतेऽत्र ॥

सरमा प्राप्स्यन्नवग्वाङ्गिरसः प्रमत्ता धेनूर्विभक्ष्यन्ति निसेव्य सोमम् ।
वाक्स्तम्भनं ते तु विदन्ति सम्यक् क्व श्रोष्यतेऽदश्च विकत्थनं वः

प०ग०अ० कष्टान्यनेकानि शुभे सहित्वाऽऽगतासि देवानुपकर्तुमत्र ।
केनापि देवेन शुनीतरा त्वं देवाङ्गनेवाद्रियसे च कञ्चित् ?

[ सरमा जिघ्रन्तीतस्ततो मञ्चात्क्षणं निष्क्रामति । पणिगणाध्यक्ष उपगणाध्यक्षेण मन्त्रयते ]

उपाध्यक्षः यत्राशङ्क्यते प्रबलता शत्रूणाम्, तत्र राजनीतिविशारदैः समर्थितः पन्था अस्ति कूटनीत्यवलम्बनम् । तदस्माभिः प्रथमं प्रलोभनैर्जेतव्या सरमा ।

अध्यक्षः बाढम्, बाढम् । सरमा प्रथमं चाटुकारैस्तदनन्तरमुत्कोच-प्रदानेन जेतव्यैव । इन्द्रप्रेषितेयं विचक्षणा दूती निवर्त्य, गवा-मन्वेषणेऽसामर्थ्यं निवेदयति चेन्न ते दिशमिमां प्रैष्यान्प्रेष-यिष्यन्ति पुनः । वयञ्च कामधेनुजातानामासां दुग्धामृतं पीत्वा देवा इवाजरा अमरा च भविष्यामः । [सम्प्राप्नोति पुनः शुनी]

गणाध्यक्षः मा मा गमस्त्वं सुरलोकमार्गे भूत्वा पणीनां भगिनी वसात्र ।
धन्या वयं स्मः सुभगेऽनुजाप्त्या गोभागलाभाच्च तवापि भद्रम् ॥

सरमा भ्राताभगिन्यावगच्छतीन्द्रो मन्येहमापज्जनितान्न भावान् ।
वरं पलायध्वमतो न यावत्संदिष्टं आक्राम्यति वज्रपाणिः ॥

नन्वहं स्नानार्थं नदीतटं गच्छामि पुनरागमनाय ।
तावदाहर्तव्या गावोऽत्र । तदैव सर्वेषां कुशलम् ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ सरमा निष्क्रामति, संलपति च गणाध्यक्ष उपाध्यक्षेण सह ]

अध्यक्षः पणिकुलं पूर्वतोऽभिक्रुद्धो देवेन्द्रः सरमया चाधुना संसूचित आक्रमिष्यत्यविलम्बम् । घातकतरशस्त्रास्त्रसन्नद्धैर्देवैः सह युधि वयं ताञ्जेतुं न शक्नुमः सामान्यतः । अतएवात्मरक्षार्थं पलायनम्, संहारार्थं चगुप्ताक्रमणमस्माभिर्ग्रहीतव्ये । वरमेषाननुमन्यमाना शुनी व्यापादनीया ।

उपाध्यक्षः नहि, नहि, माभूदपरः स्फोटो गण्डस्योपरि । हतायां तस्यां पूर्वतोऽपि तीव्रतरमन्वेषणं भवितुमर्हति ।

अध्यक्षः किञ्चास्माकं समक्षे चत्वार एव विकल्पाः ।
प्रथमः उत्कोचदानेन सरमानुकूल्यम् । द्वितीयः सरमा-वधः । तृतीयः क्षमायाचना-पूर्वकं गोमोचनम् । चतुर्थश्च युद्ध-सज्जा ।

उपाध्यक्षः नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ! परीक्षितः किं चतुर्षु कश्चित्पन्थाः ?

अध्यक्षः भवत्समक्ष एव भगिनी-कृता सा शुनी गोधनमपि स्वीकर्तुं नोत्सहते । ननु द्वितीयो विकल्प आचरणीयोऽधुना । स्नानं कृत्वागमिष्यन्त्यास्तस्या अनुष्ठेयं त्वयास्मदभिमतम् । सगरलक्षीर-दानेन किंवा शस्त्राघातेन । अहन्तावदन्यत्र व्रजामि ।

[ उपाध्यक्षो विचारमुद्रां नाटयति ]

उपाध्यक्षः [दौवारिकं] सदुग्धं पात्रद्वयमानय [इतस्ततो भ्रमन् दृश्यते। दौवारिकः सदुग्धं पात्रद्वयमानयति, निष्क्रामति च। उपाध्यक्षः पुटिकामेकामुद्घाट्य, परावृत्य च दुग्धपात्रान्तिकं गत्वा चूर्णं मिश्रयन्निव लक्ष्यते दर्शकैः। सरमा सम्प्राप्नोति]

सरमा कीदृशी विरसास्ति भवतामेषा रसा ?

उपाध्यक्षः एवमेव । वयं न पिबामो रसाजलम् । दुग्धं वा सुरा वा पीयतेऽत्र । अपि तृषा बाधते भवतीम् ?

सरमा बाधते ? तृषापीडिताऽहं मृतप्रायास्मि ।

उपाध्यक्षः [ आत्मानं निगूढयन् शङ्काकुल इव दृश्यते दुग्धं यच्छन् तस्यै ] अमृतस्पर्धि दुग्धमिदं पीत्वा शाम्यति तृषा सपद्येव ।

सरमा दुग्धं....शत्रुप्रदत्तं दुग्धं !....नाहं पिबामि ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपाध्यक्षः किं शात्रवं दुग्धदानपानयोः !

[ दुग्धं दृष्ट्वा स्वां रोद्धुमसमर्थायाः सरमाया मुखाल्लाला स्रवति, तदनन्तरं शङ्किता दुग्धं पिबन्ती प्रसन्नतरा दृश्यत उत्तरोत्तरम्, वदति च मधुर-वाण्याम् । ]

सरमा कियन्मधुरं दुग्धम् ! [ क्षणानन्तरम् ] का मे शत्रुता भवद्भिः ? युष्माकं विरोधो देवैः सह, न च मया । जानीहि मां स्वभगिनीम् ।

उपाध्यक्षः [ हृष्टः ] वयं सर्वे ते भ्रातरः । अत्रैव स्वावासं विधेहि । प्रतिदिनं त्रिवारं दुग्धं पीत्वा स्वास्थ्यं प्राप्नुहि ।

सरमा मां त्रयो देवसैनिकाः प्रतीक्षन्ते रसापारम् । गन्तव्यमेव मया शीघ्रं सूचयितव्यश्च देवराजः ।

उपाध्यक्षः स्वसः ! किं सूचयिष्यसि ?

सरमा शोचामि—कथं भविष्यति हितं स्वभ्रातृणाम् ।

उपाध्यक्षः [ सरमाया अपश्यन्त्या द्वितीयं दुग्धपात्रं जानन् कराघातेन निपात्य दौवारिकमादिशति ] आह ! च्युतमधः । हंहो ! पुनरानय दुग्धम् [ दौवारिको दुग्धमानयति । सरमा तदपि सानन्दं पिबति । ]

सरमा अहो ! दिष्ट्यैव प्राप्यत ईदृशं प्राणप्रदं पयः ।

उपाध्यक्षः कामधेनुजातायाः क्षीरमिदम् । नित्यमेव लप्स्यसेऽत्रोषित्वा....हे। स्वसः ! नेन्द्रो जानीयाद् बृहस्पतेर्गवां स्थितिम् ।

सरमा [ तूष्णीमास्ते ] अस्त्वहं गच्छामि [ निष्क्रामति, गणाध्यक्षः सम्प्राप्नोति ]

अध्यक्षः अप्यपिबद्दुग्धं सा ?

उपाध्यक्षः पीत्वा स्वर्गता ।

अध्यक्षः साधु, साधु । मृता दुष्टा ।

उपाध्यक्षः जीवन्त्येव स्वर्गं गता ।

अध्यक्षः न दत्तं विषम् ?

उपाध्यक्षः दत्तं विषादपि घातकतरं मधुरं दुग्धम् । यत्पीत्वा सा श्वसन्त्यपि मृता । देवराष्ट्रस्य विश्वस्ता गुप्तचरी दुग्धं पीत्वाधुना तस्य प्रातिकूल्यमाचरितुं विचारयति ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्यक्षः अपि दत्तं तयेदृशं वचनम् ?

उपाध्यक्षः नैव, न सा ब्रवीति पूर्ववत्कर्कशवचनानि। तस्या नेत्रयोः कृतज्ञता नृत्यतीव लक्ष्यते। मन्ये शनैः-शनैः परिवर्तमाना सा देवलोकसम्प्राप्तिपूर्वमेवास्मदीया भविष्यतीति। उत्कोचग्रहीतुरित्थमेव विनिपातो भवति।

अध्यक्षः नाहं दुग्धपानमात्रमुत्कोचग्रहणं मन्ये।

उपाध्यक्षः न स्यादेव उत्कोचो भवत्कृते, किन्तु कुक्कुरेभ्योऽस्त्येव। प्रत्येकस्य प्राणिनो मूल्यं भिन्नं भिन्नं भवति। अमूल्यो महात्मा दुर्लभ एव जगति।

अध्यक्षः अप्याशास्से दुग्धं पीत्वा सरमा नास्मद्विरुद्धमाचरिष्यति ?

उपाध्यक्षः न दृश्यन्त उत्कोचग्राहिणोऽपरिवर्तिताः। यथा चोच्यते:—

वाणी कर्कशतां विहाय भजते माधुर्यमिश्रं वचः
वक्रा घूर्णितदृष्टिरेव कुरुते पीयूषवर्षां हिताम्।
आकृत्या कटुरालसी मृगयते कार्याणि चाशुक्रियः
रूपं धारयतीतरं सरटवत् निर्लज्ज उत्कोचभुक्।

[वार्तालापपरावुभावेव निष्क्रान्तौ। मध्यवर्तिनी जवनिका पतति। एकपार्श्वतः सरमा, अपरतश्च देवसैनिकाः प्रविशन्ति। सैनिकाः संकेतैः सरमां गवां स्थितिं पृच्छन्ति। सरमा शिरसा निषेधति। सर्वे द्विस्त्रिर्वा परिक्रमन्ते रङ्गमञ्चमन्तर्गमनैर्बहिरागमनैश्च। तत उद्घाट्यते मध्यवर्तिनी जवनिका। इन्द्रः सिंहासनाधिरूढो दृश्यते। सरमा शनैः शनैस्तमुपगच्छति, करावग्रे प्रसार्य प्रणमति च।

इन्द्रः कैर्हृता गावः ?

सरमा [ वक्रग्रीवा तूष्णीमास्ते ]

इन्द्रः वद कस्य वक्षो वज्राघातमाह्वयति ?

सरमा [ नतनयना ] अहं.....भृशं.....प्रायते.....।

इन्द्रः [ रोषताम्राक्षः ] प्रयतमानायां त्वय्यपरिज्ञाताश्चौराः ? को विश्वसिष्यत्यधमे ! त्वयि ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरमा [ अधोमुखी ] क्षन्तव्याहम्..... .....अहन्तु रसापारमपि गता; किञ्च..... .....।

इन्द्रः किञ्च तत्रापि त्वया न कोऽपि गोतस्करो दृष्टः ?

सरमा [ कम्पिता ] यदि मार्गाः प्रशस्ता अभविष्यन्.....

इन्द्रः [ क्रुद्धतरः ] तर्हि सरमा कृतकार्याभविष्यदित्येव ते विवक्षा ?

सरमा [ शनैः शनैः ] चौराश्चतुराः प्रतीयन्ते । तैर्जलमार्गो गृहीतः ।

इन्द्रः कथं त्वयावगतं तैर्जलमार्गो गृहीत इति ?

सरमा [ स्वां गृहीतां मन्यमाना ] रसातटान्न लब्धानि तेषां पद-चिह्नानि ?

इन्द्रः किमभवद्रसापारम् ?

सरमा [ विधृतेव ] प्रतीयते धूर्तैश्चौरैर्जलमार्गेणैवाज्ञातप्रदेशं नीता गावः ।

इन्द्रः जिह्वा ते कम्पते कस्माच्छ्रुतमस्ति किमश्रुतम् ?
वाक्कथं द्विविधाग्रस्ता व्याजनिन्दास्तुती कुतः ?
किमर्थं निन्दितस्यापि गुणः कश्चित्प्रशस्यते ?
प्रस्तवीसि पथोऽनेकान् शत्रुं रक्षितुमीहसे ?
कथं भीतासि तस्मात्त्वं यो हि त्वां बहुमन्यते ?
उत्कोचोऽस्ति त्वया नूनं गृहीतोऽस्मद्विपक्षतः ॥

[ इन्द्रः पादेन प्रहरति सरमाम् । सा च चीत्कारं कुर्वती भुक्तं वमति । दुग्धगन्धि वमनमवधानेन पश्यन् देवेन्द्रः सेवकमेकमादिशति । ]

इन्द्रः नय चिकित्सालयमेतां सम्प्रापय च पुनश्चेतनामधिगताम् । अन्यदपि प्रष्टव्यास्त्येना [ अनुचरस्तथाकर्तुं सरमां वहति ] [सेनापतिं स्कन्धमभिलक्ष्य] गोहरणं पणिभिः कृतमनुमीयते । तेऽस्माकं प्रतिवेशिनः । देवानां समुन्नतिमसहमाना एतादृशम-भद्रमाचरन्ति ।

स्कन्दः आज्ञापयतु देवः पणीनां विनाशाय । न ते स्थातुं शक्नुवन्ति दिनद्वयमपि सुरसेनाविरुद्धमाहवे ।



CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रः मा, मैवम्। पणिराष्ट्रं पूर्वं स्वर्गस्यैवाङ्गमासीत्। पणिषु बहुसंख्यकानामस्माकञ्च पूर्वजः पुण्यश्लोकः कश्यप एव। इत्थमस्माकं स्वजना न ते सर्वे वधार्हाः। तेषां त एव दण्डनीया येऽस्मद्राष्ट्र आतङ्कं प्रसारयन्ति, तस्करवृत्याऽस्मत्प्रजा लुण्ठन्ति च।

स्कन्दः अन्येऽपि यक्षगन्धर्वकिन्नरादयो देवयोनिविशेषाः सन्ति। ते न कदाचिदपि देवांस्तापयन्ति। कथं पणय एवास्मान् दावयन्ति।

इन्द्रः न पृथक् पृथक् राष्ट्रं यक्षगन्धर्व-किन्नरादीनाम्। तेषां राज्यानि त्रिपिष्टपकेन्द्रस्याङ्गभूतानि, अतएव केन्द्रेण तेषां विरोधोऽपि नाक्रान्तिजनकः। पणिभिः पृथग् राष्ट्रं स्थापितम्। भिन्नराष्ट्रस्य हिताहितेऽपि भिन्ने जाते! संघर्षशान्तिस्तु तदैव सुष्ठायिनी यदा पूर्ववद् बृहत्तरं स्वर्गराष्ट्रं स्यात्।

स्कन्दः देवेश! किं तद् भवितुं शक्यते?

इन्द्रः न किञ्चिदसम्भवम्। प्रजा गाव इव परिचाल्यन्ते। प्रजाहितं कर्तुमनसो नेतार इत्थं चिन्तयन्ति चेत्, प्रजा अनुमोदिष्यन्त एव। भौगोलिकदृष्ट्यापि पणिराष्ट्रं स्वर्गस्याभिन्नमङ्गमस्ति।

स्कन्दः प्रयतेऽहं बृहत्तरं स्वर्गं पुनः स्थापयितुम्। भवतामादेशमुररीकृत्य त एव पणयो मया हन्तव्या ये प्रधानरूपेण गोहर्तारो बृहत्तर-स्वर्गविरोधकाश्च। ये केवलमादेशपालका नायकास्तान्सजीवान्धृत्वा श्रीमन्तं प्रापयिष्यामि। बृहत्तरस्वर्गरचनार्थमनुमन्यन्ते चेत्ते क्षन्तव्याः श्रीमद्भिः।

[ अनुचरः सरमया सह सम्प्राप्नोति ]

इन्द्रः कैर्दत्तं दुग्धं तुभ्यम्?

सरमा (भीता) रसापारं वसद्भिः पणिभिः।

इन्द्रः क्व सन्ति गावः?

सरमा पणिभिर्निगृहीताः।

इन्द्रः कियद्दुग्धं पीतम्?

सरमा शेटकमात्रम्।

इन्द्रः अन्यत्किमासम्?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरमा नान्यत्किञ्चित् ।

इन्द्रः शेटकमात्रं दुग्धं पीत्वा त्वया राष्ट्राहितमसत्यं भणितम् । दुष्टे ! दूरमपसर । सन्ततिस्ते ग्रासं भुञ्जाना जीविष्यतीति शापो मया दीयते [ पुनः पादेन हन्तुं प्रयतते । सरमा सचीत्कारं पलायते । स्कन्दं प्रति ] सरमा नूनमुत्कोचदातॄन् गोहर्तॄनेव सम्प्राप्स्यति । अनुसरिष्यमाणा सा प्रापयिष्यत्यभीष्टं स्थानं युष्मान् । तत्र तया सहोत्कोचदायिनो गोहर्तारो हन्तव्या वज्राघातेन, यतः—

उत्कोचो भ्रंशयत्येव नूनमुत्कोचलोलुपम् ।
उत्कोचदातुरप्यात्मा सिद्धान्ताद्धि पतत्यधः ॥

दत्वैकः साधयेत्कार्यं गृहीत्वान्यः करोतु तत् ।
नाना संस्थाः किमर्थं नः, सदाचारं क आचरेत् ? ॥

कियान्दत्तः कियानाप्तो गण्योऽयं नान्यदोषवत् ।
ग्राह्योऽल्पो योऽद्य लघ्वर्थेऽधिकः श्वश्च गरीयसे ॥

भुक्त्वा पीत्वा गृहीत्वा वा न्यायं कर्तुं न शक्यते ।
कृतज्ञतावशाद् भोक्त्रा नापराद्धोऽपि दण्ड्यते ॥

पानीयं चापि नो पेयं तस्य शासकसेवकैः ।
भोक्तव्यो दारुणो दण्डो येन न्यायानुसारतः ॥

मा भूच्चेष्टेदृशी भूयो दण्डनीया शुनी मया ।
अन्यथा चित्रगुप्तोऽपि पापिनो वासयेदिह ॥

पटाक्षेपः

[ नेपथ्ये डिण्डिमध्वनिपूर्वकं श्रूयते ]

पणिगणाध्यक्ष आदिशति—शुनी सरमा हन्तव्या, यतो देवसेनानुसृता सास्मदर्थे महती बिभीषिका शरणमिच्छन्ती शात्रवमाचरन्ती वेति [ म्रियमाण-शुनी-चीत्काराः ]

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन बृहस्पतिर्या
अविदन्नि गूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ।

ऋग्वेद ११-१०-९-१०८-११

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# प्रसूनं मदीयं सरोजं त्वदीयम्

[ शरदृतौ सायंकाले सेनाशिविरस्थो ज्यामघः सेनानायकैः सह वार्तापरो दृश्यते श्रूयते च तदैव त्राहि त्राहीत्यार्तनादोऽनतिदूरादेव । ]

राजा ज्यामघः [ अवधानेन ] पश्य, केयं बाला विपदापन्नाकारयति । भवतु नाम शत्रुराष्ट्रम्, समाप्तिं गतेऽपि युद्धे नास्माकमभिमतमुत्पीडनं कस्यचिदपि, नारीणां बालकानान्तु विशेषेण । [ एकः सैनिकः "यथाज्ञापयन्ति देवपादाः" इत्युक्त्वा शिविरस्थराजकक्षाद्बहिर्निर्गत्यार्तनादागमन-दिशां प्रति चलति, प्रत्यावर्तते च कन्ययैकया सह । अन्तराले राज्ञः सेना-नायकानां च परस्परं "अस्माकं कति सैनिका हता आहताश्च । शत्रूणां कति हताः कत्याहताः कति च जीवद्धृता" इत्यादि प्रश्नोत्तराणि श्रूयन्ते । ]

[कन्यया सह सम्प्राप्तः सैनिकोऽभिवाद्य निवेदयति]

एतामाततायिभ्यो विमोच्य तत्र श्रीमतां समक्षमेव उपस्थापयितुकामानस्माकं सैनिकानाततायिनोऽन्यान्मन्यमानैषा क्रन्दितुमारब्धवती ।

कन्या ( राजकुमारी ) कथमहं जाने कः कीदृशोऽस्ति । न शोभतेऽभद्राचरणं विजयिनाम् । अस्तु निवेद्यते—दिवंगता पूर्वमेव मे जननी । जनको भ्राता चाहवे निहतौ । अनाथाऽहं जिगमिषामि कञ्चिदाश्रमपदमिति प्रापयितव्या देवेन तत्र ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा — नान्यत्रगमनमनिवार्यमधुना। अस्मत्प्रजापदमाप्तया न भेतव्यं भवत्या।

राजकुमारी — न भेतव्यं स्वपितृघातकात् ?

राजा — मा भाषीरित्थम्। राष्ट्रपरकं कञ्चित्कलहमाश्रित्य युध्यन्ते राजानः। युद्धे कश्चिदपि व्यापाद्यते। एको विजयते, अन्यः पराजयते। व्यक्तिविशेषो नास्माकं शत्रुः। विजितराष्ट्रस्य प्रजा अस्माकं प्रजा अधुना। तेषां च योगक्षेमोऽस्माकं धर्मः। यः कश्चिदपि त्वां पीडयति, दण्डयिष्यते सोऽस्माभिः।

राजकु० — किं करवाण्यधुना नगरे वसन्ती। नास्ति कश्चिन् मामकीनः।

राजा — मा भूर्हतोत्साहा। प्रस्थास्यामः श्वो वयं स्वराजधानीम्। न चेदापत्तिः, सहैवास्माभिर्गन्तुमर्हति भवती।

राजकु० — विवक्षाम्येकान्ते [राज्ञः संकेतमभिज्ञायान्ये निष्क्रामन्ति] कीदृशमाचरणमनुभविष्यामि तत्र।

राजा — यदपि रोचते भवत्यै।

राजकु० — विजितायै रोचते ?

राजा — मा मैवम्, रत्नं त्वां विभावयामः।

राजकुमारी — दासीरत्नम् ?

राजाः — दासीनां स्वामिनीं मत्वा। पंचदशवर्षपूर्वं कृतोद्वाहस्य निरपत्यस्य मम वंशस्योद्गमं मत्वा।

राजकुमारी — तर्हि न गन्तव्यं मया तत्र।

राजा — कथम् ?

राजकु० — कतिवर्षदेशीयाः श्रीमन्तः ?

राजा — चत्वारिंशद्वर्षीयः।

राजकु० — श्रीमतां पिता ?

राजा — मज्जन्मन एकादशवर्षानन्तरं स दिवंगतः। एवं एकादश-वर्षीय एवाहं सिंहासनमध्यतिष्ठम् ?

राजकु० — काप्यन्या सन्ततिर्भवत्पितृपादानाम् ?

राजा — न कापि।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजकुमारी ये केचन संभाविताः सम्बन्धाः पुरुषेण नार्याः, न तेषामन्यतमोऽपि कश्चिद्विश्वसितुं योग्य आवयोर्मध्ये ।

राजा कथमिति ?

राजकु० नाहं स्यां मान्या जनेषु श्रीमतां भगिनी, यतः एकादशवर्षीय एव भवति दिवंगताः श्रीमत्पितृपादा अद्वितीयापत्यकाः । अहं च तदारभ्य नववर्षानन्तरं संजाता ।

राजा अन्यः सम्बन्धः ?

राजकु० नाहं तव दुहितैव मन्तव्या । विंशतिवर्षाणि यावत् अत्रभवतामुद्वाहोऽपि न सञ्जातः, किंपुनर्मादृश्याःसन्ततेरुद्भवः ।

राजा कश्चिदन्यः सम्बन्धो विचारणीयः ।

राजकु० अपुत्रस्य भवतः स्नुषाऽपि न ग्राह्या जनैरहम् ।

राजा कश्चनोऽन्यः ?

राजकु० अत्रभवतां माता, मातामही, पितामही वा ? को विश्वसिष्यति ?

राजा यथा द्वौ पुरुषौ सम्बन्धनिरपेक्षौ मैत्रीभावमापन्नौ निवसतस्तथैवावाम्—एका नारी, एको नरश्च–कथन्न सहैव निवसाव ।

राजकु० अप्येतत्स्वीकरिष्यति परिणीता पत्नी ?

राजा यद्यहमिच्छेयम् ?

राजकु० त्यक्ष्यति सा श्रीमन्तम् । तया त्यक्तं राजपदमधिष्ठितमपि भवन्तं प्रजा अपवदिष्यन्ते । समष्टिः सर्वोपरिस्था । अनुदारा च । न कञ्चनापि सा क्षमते ।

राजा राजकन्ये ! राजाऽहम् । कोऽर्थो जनापवादस्य ? न कश्चित्किञ्चित्कर्तुं शक्यति मदननुकूलम् ।

राजकु० नापि राजमहिषी ?

राजा द्रष्टव्यमेतत् । तच्च तदैव परीक्षितुं शक्यते यदि चलति मया सह भवती । भविष्यत्, समाधानं च तदैव ज्ञाप्स्येते ।

राजकु० यथा रोचते श्रीमते ।

राजा प्रस्थास्यामः श्वः । विश्रब्धा स्वपिहि दूष्ये नातिदूरनियोजिते । श्वो ब्राह्ममुहूर्ते प्रस्थाय दिनक्षयात्पूर्वमेव वयं गृहं प्राप्स्यामः ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृश्यान्तरम्

[ राजकुमार्या सह दृश्येते द्वे अपरे विधृते नार्यौ। नेदीयस्येव स्त्रीणामवरुद्धार्तवचनानि पुरुषाणां च मन्द-मदोन्मत्तविकत्थनानि श्रूयन्ते । अनतितीव्रत्वान्निन्द्रां भङ्क्तुमसमर्थाणि जाग्रतामेव कर्णगतानि प्रतीयन्ते। तिस्रोऽपि नार्य उन्मुक्तकर्णा दृश्यन्ते ]

पुरुषस्वरः [ नेपथ्ये ] आ—आ—गच्छ। न—बाध—बाधयिष्यामि। न—ह—निष्या—मि। स्नेहिष्यामो वयम्।

स्त्रीस्वरः नैव नैव । दूरमपसर निर्लज्ज ? युद्धक्षेत्रे यूयं शत्रूनजयत न तु नारी-हृदयम्। परदारान् प्रकुरुषे, पतिव्रतां तिरस्कृत्य कथाशेषं गमिष्यसि। आह,—ओह !

पुरुषस्वरः अ—अस्तु—अस्तु—एवमेव। त्वाम्—आ—लिं ग्य—अहं मृत्योः—अपि—न बिभेमि। ओहो—एवम् [ चीत्कार-पुरस्सरं आक्रमण-प्रतिरोधौ प्रतीयेते। अपरपार्श्वतोऽपि मदोन्मत्तस्वरः श्रूयते ] त्व····या शपामि। भृशम् अह··· त्वयि····स्नि···स्निह्यामि। सर्वं त्वदर्थे त्यक्ष्यामि।

नारीस्वरः राक्षस ! मदिरां पीत्वा मृषावचनैस्तर्पयसि ? कः शक्नोति स्वपत्नीं बालाँश्च त्यक्तुम् ?

पुरुष-स्वरः अहं त्यक्ष्यामि। वचनं ··· ददामि। लिखित्वा ददामि। ····क्वास्ति कर्गजम् ?
सर्वं ददामि। प्राणान् ददामि।

नारीस्वरः अपसर लुण्ठक ! नामशेषो भूयाः।

राजकुमारी [सख्यौ प्रति] अन्या काचिद् विधृता ! भूपालोऽसौ दिनान्तेऽ-गदद्यत्तेनाज्ञा प्रसारिता—केनचिद्युद्धधृतेन विशेषतः कयाचि-न्नार्या सह माभूदभद्रो व्यवहार इति।

सखी तस्य सैनिकाश्च नारीभिःसह बलात्कारमनुतिष्ठन्ति।

राजकुमारी अपि श्रुतम्—अन्तःपुरस्थाः सर्वा अपि स्त्रियस्तैरपहृताः ? अहो ! रूपमस्माकं शत्रुः।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्या सखी — आम्, आम्। मया सह सुशीलाप्यासीत्। तस्या आननं "शीतला" मातृरोगाक्रान्तत्वाद्विद्रूपमित्येतैर्दुष्टैर्न सा धृता। मां चात्रानीतवन्तः।

राजकु० — नरपशुभिरेतैर्नार्यो वासनातृप्त्यै वर्त्यन्ते।

सखी — राजा तु भद्रः प्रतीयते। न जानाति स किं कुर्वन्ति तस्यैते सैनिका इति।

राजकु० — कीदृशोऽस्ति महाराज इत्यपि ज्ञास्यतेऽधुनास्माभिः। भद्रश्चेन्निवेदिते बलात्कारवृत्तान्ते स ता रक्षिष्यतीति निवेदनीयमेतत्सर्वम्।

अपरा सखी — अत्र भवती राजकुमारी गमिष्यति निवेदयितुं राज्ञे? मदिरज्योत्स्नाधौतयामिन्यां यदि भवतीं दृष्ट्वा परिहृतसदाचारः राजा किमप्यभद्रमाचरेत् ....।

राजकु० — अन्या उपकर्तुं सहिष्ये सर्वम्। मया सह यद्भाव्यं श्वः, भवतु तदद्यैव! विजिता वयम्। गच्छाम्यहम्। युवाभ्यां च मच्चीत्कारं श्रुत्वा तुमुलकोलाहलं कर्तुं सन्नद्धाभ्यां स्थेयम्।

[शनैः शनैरपसर्पति। जवनिका-परिवर्तनम्]

राजकु० — [राजदूष्यस्थं यामिकम्] राजदर्शनं वाञ्छामि। निवेद्यताम्—एका युद्धधृता दिदृक्षतीति।

यामिकः — प्रगाढनिद्रावशगं राजानं नाहं निवेदयितुं शक्नोमि। विरुद्धाचरणं दण्डावाहनम्।

राजकु० — अदण्ड्य एव। शिविरमेतत्, नैव नगरस्थमन्तःपुरम्। कश्चिदाक्रामेच्चेत् निद्राभङ्गभीरुणा त्वया न प्रबोध्यते महाराजः? प्रबोध्य दण्डं नैव, पुरस्कारमाप्स्यसि।

[उच्चैः क्रन्दति - "रक्षतु महाराजः"]

यामिकः — राजाज्ञया नार्योऽदण्ड्याः, अन्यथा मृताःस्या अद्यावधि।

[विवदमानयोस्तयोर्विनिद्रो राजा सम्प्राप्तस्तत्र स्वयमेव]

प्रतिरुद्धाऽपि चीत्कारमकरोदेषेति निरपराधोऽहं क्षन्तव्यः।

राजाः — स्वस्थानमशून्यं कुरु। पृच्छाम्यहमेताम् [राजकुमारीं प्रति] का वार्ता?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजकुमारी मिथ्यैव श्रीमतां कथनं यद्भवत्सैनिकाः स्त्रीभिःसह भ्रद्रमाचरन्ति। अपि नाभवननतिदूरदूष्येषु नारीणामुच्छ्वासाः सचीत्काराः श्रीमतां कर्णगोचराः? को नाम विश्वसेद् भवति वचन-व्यवहारयोरन्तरं परिज्ञाय?

[क्षुब्धो राजा राजकुमारी-सङ्केतानुसारेण छद्मभेषमुपधार्य दूष्येभ्यो बहिर्भ्रमति। वस्तुस्थितिं विदित्वा यामिक-प्रधानमाकारयति स्वदूष्ये। उद्विग्नश्च तस्यागमनं प्रतीक्षते]

यामिक-प्रधानः [ प्रविश्य प्रणमति ]

राजा किमेतत्कथञ्चैतत्? अस्माकं सैनिका अस्मदाज्ञामुल्लङ्घ्य युद्धधृताभिः शत्रुनारीभिरभद्रमाचरन्ति। कठोरदण्डेन वर्तयितव्यास्ते। येनाजीवनं प्रमदाजनमपकर्तुं कोऽपि स्वप्नेऽपि न चिन्तयेत् [ यामिको यदाज्ञापयति देव इत्युक्त्वा निष्क्रामति। "उपकृताऽस्मि" इत्युक्त्वा राजकुमारी स्वकीय-दूष्यान्तः प्रविशति ]

दृश्यान्तरम्

[ पक्षिणां कलरवः श्रूयते। मन्दः पवनो दूष्यस्याभ्यन्तरं प्रविश्य राजकुमार्याः केशान् चालयति। बालारुणरश्मयस्तस्यालसार्धनिमीलितनयनाभ्यां गतागतं कुर्वन्तोऽधिकं शोभन्ते। द्वारस्थः कश्चित्सैनिको राजाज्ञां श्रावयति ]

सर्वैः सन्नद्धैर्भाव्यं नगरं गन्तुम्। संसूच्यते राजाज्ञा नगरगमनाय। घटिकात्रयानन्तरमेव प्रस्थानवेला ज्ञातव्या। प्रहरद्वयेनैवास्य राज्यस्य सीमानमुल्लङ्घ्य प्रवेक्ष्यामस्त्रिचतुर्वादिनपर्यन्तं स्वनगरम्।

राजकु० निवेदयितव्यो राजा—वयमुद्यताः स्मः स्वशरीरैः।

एका सखी रथारूढा राजकुमारी सैनिकैरादृता राज्ञा सह गमिष्यति, किं भविष्यत्यावयोः?

राजकु० अहं मोक्षयिष्यामि युवाम्। स्वगृहं गन्तव्यं युवाभ्याम्।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

**अपरा स्त्री** अपि स्वीकरिष्यन्ति ते ? निष्कलङ्के आवामिति कः प्रत्ययमुत्-पादयिष्यत्यस्मज्जनेषु ?

**प्रथमा नारी** किदृशीयं विडम्बना ! युद्धगृहीताः पुरुषा मुक्तिमवाप्य स्वं स्वं गृहं संप्राप्ता लप्स्यन्ते समादरं प्रणयिजनैस्तत्र। विजेतारश्च परनारीणां सतीत्वं बलादपहृत्य गृहं गता प्राप्स्यन्ति कुलवधूभि-र्विहितां स्वागतार्चनाम्। न काचिदपि ललना बलाद्धृतशत्रुनारी--नयन-गलिताश्रुभिःसलवणस्वेदमपि स्वपतिं त्यक्ष्यति। किञ्च, का गतिः शत्रुधृतानामस्माकम् ! एतैर्भुक्तमुक्ता वयं स्वजनैरपि त्याज्या एव [ अवरुद्धाश्रूणि विमुञ्चति ]

**राजकु०** अहो ! कीदृशीयं नरजातिः। प्रथमं ते नारीन् प्रकुर्वन्ते तदनन्तरं तास्तैरेव मन्यमाना उच्छिष्टा परित्यज्यन्ते। स्वयं च ते न कदाप्युच्छिष्टा जायन्ते।

**एका नारी** इत्थमेव भवति पुरुष-प्रधानेऽस्मिन् समाजे। स्त्री-प्रधानः समाज--श्चेन्न स्यादीदृशी स्थितिरथवा विलोमा भवेत्, किंचाधुना नारी प्रधानता कथावशिष्टैव। किं कर्तव्यम् !

**राजकु०** मत्सखीत्वमापन्नाभ्यां युवाभ्यां सहैव गन्तव्यम्। महाराजमहं मानयिष्यामि।

**द्वे एव** प्रस्तुते आवाम् [ एका ] विधिरेवास्माकं गतिरधुना। हन्तु नाम कश्चिदावाम्, तदपि वरमेव। नार्या अङ्गानि लावण्यं च शात्रवमाचरन्ति तस्याः कृते। न कोऽप्युपचारः। अहो ! नियति-क्रीडाकन्दुकं निरुपाया नारी !

**राजकु०** सन्नद्धे भवतं प्रस्थानार्थम् [ राजकुमारीसहाये ते गतागतं कुर्वन्त्यौ दृश्येते। अचिरादेव प्रयाणवाद्यं श्रूयते। नेपथ्ये वार्तालापः, उपानहां खट-पटम्, अश्वानां हिनहि-नाहटं रथाङ्गानां घरघरं चूं चूं इत्यादिभिर्मिश्रितो ध्वनिर्वातावरणं व्यस्तमशान्तं च विदधाति ]

पट-परिवर्तनम्

**स्थानम्—ज्यामघस्य राजभवनम्**

[राजमहिषी शैव्या आरार्तिकपात्रं सज्जीकुर्वन्ती दृश्यते। सख्यो लाजैः पुष्पैश्च पात्राणि पूरयन्ति। प्रतीयते तत्र

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रथारूढं राजानं पश्यन्ति। जिज्ञासाधिक्याद् राज्ञी सखीमेकामुपरिस्थं स्थानं निर्दिश्य ]

राज्ञी तत्र गत्वा पश्य कियद्दूरमस्ति विजयश्रीमण्डित आर्यपुत्रः।

[ सखी यथानिर्दिष्ट-स्थानमारुह्य पश्यत्यवधानेन। राज्ञी च पुनर्वर्तिकाज्वालन-परायणा भवति, प्रत्यागतां सखीं च पृच्छति ]

राज्ञी क्वास्ति महाराजः ?

सखी महामान्याः सम्प्राप्ता एवावधार्यताम्।

राज्ञी एकाकिनार्यपुत्रेण न तथा शोभाप्तव्या यथा वामभागस्थया मया सह, किं वाहं शोभेऽधिकमार्यपुत्रेण।

सखी न सन्ति देवपादा एकाकिनः।

राज्ञी अपि कश्चिदपरोऽपि रथारूढ ?

सखी [ शङ्किता ] क्षन्तव्याहं, अपराऽपि काचिद्रमणी सहाधिष्ठिता दृश्यते।

राज्ञी रमणी ? इतरभूपसदृशोऽस्मद्राजापि काञ्चिद्रमणीं लुण्ठित वस्तूनीवानयति !

सखी न कोऽपि महाराजः सामान्यलुण्ठक इव स्वरथस्थानि करोति स्वायत्तीकृतवस्तूनि, क्षन्तव्याहम्।

राज्ञी किं तर्हि गान्धर्वेणोढा सा महाराजेन ? किमिदं जातम् !

सखी कृतमधैर्येण। संप्राप्तप्राया भर्तृपादाः स्वयमेव प्रष्टव्याः।

राज्ञी [ अपरां सखीमादिशति ] पश्य त्वं-सत्यमेव काचिद्रमणी रथारूढास्ति।

[ गच्छति सा ] अनर्थमेतत् शत्रुभिः सह हताऽहमपि राज्ञा। [भावान्तरं नाटयति] आगच्छतु सोऽत्र। एवं विलपिष्यामि-अहमपि-ऋतुपर्णपुत्री-शप्स्यापि-द्वावेव-न हि द्वावेव-राजपार्श्ववर्तिनीं नाशयिष्यामि [ सखी प्रविश्यापि न किञ्चिद्भाषते ]

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्ञी — कथं मौनमाकलितम् [ उच्चैः क्रन्दति ] अस्ति काचित् ? [ सखी मौनेनैव स्वीकरोति ]

राज्ञी — किमहं करवाणि ! अपनयैतामारार्तिकसामग्रीम् [ लाजापुष्प--पात्राण्यपसारयति ]

सखी — धैर्यमालम्ब्यताम् । अलममंगलक्रियाभिः । भूपालोऽत्रभवत्या अनुकूलो दक्षिणः पतिर्न कदाचिदप्यनीप्सितमाचरिष्यति भवत्याः ।

राज्ञी — शङ्कितं मे मनो नोत्सहते स्वागताय । एषाहं प्रचलिता कोप--भवनम् । [सर्वमसज्जितमर्धसज्जितं वा त्यक्त्वा प्रचलति । सख्यो विकीर्णां स्वागत-सामग्रीं सञ्चित्य यथास्थानं स्थापयन्ति । सम्प्राप्तो महाराजो रथादवतीर्य भूमौ स्थितो राजमहिषीमपश्यन्नुद्विग्नो राजप्रसादाभ्यन्तरं-गन्तुकामो दृश्यते । राजकुमारी तस्याः सख्यौ च रथाद--वतीर्य राजानमनुसरन्ति । राजा राजमहिषीं द्वारस्था-मलभमानः साश्चर्यश्चान्तःपुराध्यक्षं पृच्छति ]

राजा — अपि सर्वे कुशलिनः ?

अ०पु०अ० — ईश्वरकृपया भवत्प्रतापरक्षिता सर्वे: सकुशलाः ।

राजा — कः स्थानविशेषो राजमहिष्याऽनुकम्प्यते स्वोपस्थित्याधुना ? आहवे परःसहस्रान् शत्रुसैनिकान्निहत्य विजयश्रीमण्डितो गृहागतोऽनुरक्तः पतिः कथन्न सत्क्रियते तया ? अपि स्वस्था भवत्स्वामिनी ?

अ०पु०अ० — शारीरिकास्वास्थ्यविषयिका न काचित्सूचना सम्प्राप्ता ।

राजा — [ कञ्चुकिनमालक्ष्य ] मनसाऽस्वस्था स्यात् ?

कञ्चुकी — मनस्याहता । अतएव ··· [ अवरुद्धः ]

राजा — कोपभवनं गता ? अस्तु तत्रैव गत्वा क्रोधमपहारयामि । [ अन्तः पुरचारिणीम् ] तिस्रोऽपि नार्यः सातिथ्यं यथास्थानं नेयाः ।

अ०पु०अ० — यथाज्ञापति देवः [ राज कुमारी नार्यौ च मञ्चपार्श्वद्वारा--भ्यन्तरं प्रवेशयति ]

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[ पीठस्था जवनिकाऽनावृता भवति । राजमहिषी शय्यायामधोमुखी सुप्ता दृश्यते । ]

राजा [ प्रविश्य ] सम्प्राप्तोऽहं शैव्ये ! स्वागतार्थमनागतां भवतीं द्रष्टुं स्वयमेव समागतः [ शैव्या न वदति, पतिं न प्रणमति न च पश्यत्येव ] ज्ञातमस्माभिस्त्वत्कोपकारणम् । मन्ये कयाचित् सख्या संसूचिता—वयं काश्चिद्रमणीमप्यन्यरत्नैः सहानीतवन्त इति । किन्तु····[राजावरुद्धो राज्ञी च मौनमाकलय्य यथापूर्वं पर्यङ्कशयाना दृश्यते । ]

राजा [ राजमहिषीमुत्थापयितुं प्रयतमानः] उत्तिष्ठ, आकर्णय मदीयं निवेदनम् । तस्या अत्रावस्थानं नानुमोद्यते चेद्वयं तां राजसीम्नो वहिःप्रेषयिष्यामः, न च तां द्रष्टुं तत्र गमिष्यामः । [पुनरुत्थापयितुं यतते]

राज्ञी [राजहस्तमपसार्य] अनावृतं श्रीमतां प्रेमाधुना ।

राजा किमनावृतम् ? नर-नारीणां संयोगः प्रिय-प्रेयसीरूप एव भवति किम् ? मया सह समागतां तां दृष्ट्वा कथं भवत्या निर्णीतं सा मम प्रेयसीति । शैव्ये ! त्वत्पुत्री यथासमये जाता चेत्तयैतादृश्यैव भाव्यमिति मया सह तां रथारूढां दृष्ट्वा त्वन्मनसि काचिच्छङ्का भवितव्या ?

राज्ञी यत्र च सुष्ठिरः पत्नीतरः सम्बन्धस्तत्र न शङ्कावसरः, किन्त्वनाख्यातपूर्वसम्बन्धस्य वयस्कपुरुषस्य युवत्या सह कोऽन्यः सम्पर्कः संभवति ? शास्त्रेषु ···· ।

राजा स्वानुभूतिं विहाय शास्त्रमुदाहरति भवती । तत्र नारीमग्निकुण्डोपमां नरं च घृतकुम्भोपमं मत्वा तयोः सान्निध्यं वर्जितमस्ति ।

राज्ञी शास्त्रं पूर्वानुभवाननुसरति ।

राजा मन्ये शास्त्रवचनमनुभवानुसारि, किञ्च न निरपवादम् । नरनारीसम्पर्को वासनाबहुल इति शास्त्रेषु समाजस्वास्थ्याय प्रवृत्तिमार्गी साधारणो लोकस्त्रासितोऽस्ति । स्त्री-पुरुषयोश्च पवित्रः प्रेरणात्मकः सम्बन्धस्तस्योदाहरणानि च शास्त्रेष्वनिर्दिष्टानि किंवा न्यूनानि सन्ति ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्ञी — स्वकीयपरिवेश एवोदाहरणान्यन्वेष्यन्ते। रमणीकृतर्षितपोभङ्ग-वृत्तानि न सन्त्यविदितानि।

राजा — येऽजितास्ताभिः, आश्रमेषु च येषु युवतयो निःशङ्कं स्वकालं निन्युः, तेषां, तासांश्चोदाहरणानि ·····।

राज्ञी — नाहमाशासेऽत्र भवन्तोऽपवादाः सिद्ध्यन्तीति। यद्रत्नं भवद्भिः समानीतं तदविलम्बं परिहर्तव्यम्। तदैव शमिष्यति मे हृदयम्।

राजा — नारी नामरहितं प्रसूनमस्ति। उपाधि-विशेषरहितमदः प्रसूनमेव मत्वा कथन्न शिरसि विधार्यते? कविना "मौनेन" सम्यगेव भणितम्:—

न माता न मातामही नैव श्वश्रूः
स्वसा नैव पत्नी न पुत्री न पौत्री
जपाचम्पकादिष्वभिन्नं प्रसूनं
सजीवं मनोहारि नारी-प्रसूनम्॥

राज्ञी — विशिष्टनाम्नः प्रसूनस्यैव महत्त्वं न तु सामान्यसुमनसः। पुष्पं तु मदारस्याप्यस्ति। तत्तु त्याज्यमेव। सम्बन्धा भावनां निर्मापयन्ति।

राजा — यत्र नियतसम्बन्धाभावस्तत्र का भावना जायते?

राज्ञी — निवर्तकस्थितीरपहाय प्रिय-प्रणयिनीपरैव।

राजा — नास्ति सम्बन्धाभावः प्रिय-प्रेयसीभावनायाः कारणम्; अपितु तस्य निदानं समाजकृते तत्प्रयासे निहितमस्ति यः समाजेन युगयुगान्तरेषु स्वरचित-सम्बन्धच्छायायां पठित आचरितश्च। समानोदराज्जातां सखीं भगिनीति कथयित्वा वासना सुवसनेनावृता। एवमेवान्यान्यसम्बन्धा ज्ञेयाः। यत्र न कश्चिद्रक्तसम्बन्धो दृष्टस्तत्र वासनाया भाण्डागारमुद्घाट्य स्त्रीपुंसौ तया मण्डितौ। गतानुगतिक्रमेण परवर्ती समाजस्तथैव मन्यमानः प्राचलत्।

राज्ञी — श्रीमतैतत्स्वीकृतं यदधुना वयं गतानुगतिग्रस्ताः।

राजा — अप्यवगतं भवत्या कथमेषा परम्परा कृतकार्या जगति?

राज्ञी — नैव, कथमभवत्?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा अपह्नुतिः, आवरणं, सहज-सम्बन्धाभावश्च कारणानि ।

राज्ञी कोऽभिप्रायः ?

राजा नर-नारीणां शरीराङ्गेषु यान्यावृतानि, तेषामनावरणं कामोद्दीपकं जातम्, यानि चानावृतानि, तानि सहजस्वीकृतिकारणान्न विकारजनकानि । कामिन्याः कमनीयनासिकाप्यावृता चेत्सैव कामोद्भाविका सिद्धयेदनावृतौ ।

राज्ञी भवन्तः सम्बन्धानां विषये..... ..... ...।

राजा नाहं विषयान्तरगतः । नर-नारीष्वमुक्तसंयोगाः कामासक्तिमजनयन्, प्रजातन्तुवितानाय प्रकृत्यनुमोदिताः कामसम्पर्काश्च मनुष्ययोनौ विलासाय ग्राह्या अभवन् । स्वाभाविका मधुरप्रेरणा वह्निजिह्वारूपतां प्राप्ता शरीरं मनश्च दग्धुं प्रारभत ।

राज्ञी अपि स्वीकरोषि दग्धुं प्रारभत इति ? स्खलनं क्व जातं, नासौ प्रकृतविषयः वह्निजिह्वया लेलिह्यते जनमानसमिति सिद्धम् । कस्तद्रक्षेत् ? कथञ्चरक्षेत् ?

राजा अभिलाषा चेज्जनमानसमपि परिवर्तयितुं शक्यते । शरीरावश्यकतामवेक्ष्य जीवने कामो गृह्यते चेत्तस्य सीमाऽस्ति किन्त्वासक्तिविद्धे मानव-मनसि सञ्चयकामिता लोभाभिभूतत्वात् सर्वग्रासिणी वासना भूत्वोद्भवति । एकः पुरुषः किंवैकानारी भिन्नलिङ्गिनैकेन मित्रेण सह भौतिकीमावश्यकतां पूरयितुं शक्नोति, किञ्चासक्तिर्विश्वेस्मिन्निखिलानपि भिन्नलिङ्गिनः स्त्रीपुरुषान् न्यूनानेव मन्यते वासनातृप्त्यै, अतएव समाजो नर-नारी-सम्पर्कानवधानेन वारयति, किन्तु पापभावना-प्रसारं विहाय न कोऽप्यर्थोऽस्या वर्जनायाः । विचलिते मनसि किं सिद्धयति शरीरावरोधेन ?

राज्ञी महाराज !

राजा मा भूः शङ्किता । नाह्यते हस्तगतं रत्नं त्यक्तुम् ।

राज्ञी नाहमकृतसम्बन्धां रमणीमस्मिन्प्रासादे वासयितुं मंस्ये । मनेच्छाविरुद्धं सात्र वास्यते चेदहं प्राणान् त्यक्ष्यामीति ध्रुवम् !

राजा जीविष्यति भवती । विमोचयाम्यहं तां यथेच्छं गमनाय । श्वः प्रातरेव..... ..... .....तद्गन्तव्यस्थानं परिज्ञाय तत्र तां प्रापयितुं

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रबन्धो भविष्यति । अधुना गंतव्यं विश्रामालयम् । समागतः प्राया रात्रिः श्रान्ता वयं स्वावाससुखमनुभविष्यामो भवत्या सह । [राज्ञी निष्क्रामति । महाराजः क्षणं विरम्य मुचुटी-वादनसमकालमेवोपस्थितां परिचारिकामादिशति किञ्चित्सामाजिकैरश्राव्यं, निष्क्रामति च ]

दृश्यान्तरम्

[ राजप्रसादस्यापरपार्श्वं यत्र राजकुमारी सहैवागताभ्यां स्त्रीभ्यां सह दृश्यते । गवाक्षादागता मयूखा राज-कुमार्याः सौन्दर्यं चाकचक्यं जनयन्ति । वाद्यं वादयन्ती सा गायति ]

लभ्यति शारद-यामिनी ।

इन्दुमुखीन्दीवरवरनयना विहरति दिशि दिशि भामिनी ॥
तारक-खचित-ललितकचवेणी
स्वेद-बिन्दु- नीहारसन्मुखी ।

कलितकौमुदी, कुमुद्वती कुज-
कुङ्कुमस्तकधारिणी ॥

ज्योत्स्नावलयितनीलदुकूलं
पृष्ठलम्बितं स्फुरति सलीलम्

सदसि विशन्ती शनैर्यथाऽसौ
राज्ञी शासनकारिणी ॥

केशकलापाच्च्युतकुसुमोपम
तारककणा भुवं सेवन्ते

रशना-नीहारिका शोभते
जटित-रजत-पट- काकिणी

गतागतं कुर्वन्तो बाला
ज्योतिरिङ्गणास्तमसो मार्गं

मोचयन्ति मा पतीद् यथैषा
प्रतिजन - निद्रावाहिनी ॥



CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्रशीर्षा कोऽसौ पुरुषः ?
कुत आयातः ? क्वास्ति ? कीदृशः ?

कस्मै दातुं ? किं पुनराप्तुं
शरति शनैरभिसारिणी ?

[ कञ्चुकी शृणोति, शिरश्चालनेनानन्दं च प्रकटयति। समाप्ते गीते रज्ज्वाकृष्य घण्टिकां वादयति । एका नारी कपाटमुद्घाट्य कञ्चुकिनमभिलक्ष्य] प्रतीयते राजभवनस्य प्रधानकञ्चुकी.....। स्वागतम् ।

कञ्चुकी सम्यग्ज्ञातं भवत्या । आदिष्टोऽहं महाराजेन राजकुमारीं संदेष्टुम् ।

अपरा नारी अप्रतिहतगतयो भवन्त आगच्छन्तु । पुरस्तादेव समासीना राजदुहिता ।

[कञ्चुकी प्रविशति, राजकुमारी कञ्चुकिनमासनं प्रदर्शयति] अपि महाराजेन संप्रेषिताः ? क आदेशः ?

कञ्चुकी अत्रभवतीं अन्तरङ्गप्रकोष्ठं नेतुं श्वः प्रातःकालेऽन्तःपुरप्रधानपरिचारिकागमिष्यति । आपत्तिश्चेन्निवेदनीयो महाराजो मन्मुखेन ।

राजकु० अपि विजितराज्यस्य राजकुमारी कर्तुमर्हत्यापत्तिम् ?

कञ्चुकी मैवं वादीः । महाराजस्येयमभ्यर्थना ।

राजकु० प्रभोरभ्यर्थनाऽपि भवत्यादेशः । आगमिष्यामि ।।

[नतमस्तकः कञ्चुकी निष्क्रामति । राजकुमारी पुनर्गायति]

लष्यति शारद-यामिनी
ज्योत्स्नाधौत-धराधर-धरणी मानसनिर्मलकारिणी ।

रचनामयी मनीषेवैषा
सदसज्ज्ञानवती सविशेषा

विश्वाधारा क्रिया निश्चला
चेतश् - चिन्ताहारिणी ।।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दीव्यन्तं दिविखेचरजालं
अङ्के खेलन्तंसुविशालं
निखिलचेतना जगत्प्रसूरिव
योगक्षेमाचारिणी ॥
एकाकी खं पश्यति योगी
कान्तां स्वप्नाविष्टो भोगी
निशा निशेशं, प्रभा परेशं
लाति हृदीशं कामिनी ॥
विश्वजनीनं भावातीतं
एकीकृतभूमौ विलसन्तं
आश्रयमन्विष्यते जनाय
निशा सदाशिवदायिनी ॥

उत्तरोत्तरं तस्याः स्वरो मन्दीभूतः शाम्यति । निद्राभिभूतां तां मन्यमाने सखौ प्रकाशमपवार्य शनैःशनैर्बहिरपसर्पतः ।

स्थानम्–राजभवने अतःपुरस्थं सभागृहम् । गवाक्षात्प्रविष्ट प्रभात-कालिकातपे त्रिसरेणवो भ्रमन्तो दृश्यन्ते । अत्र स्थान-निर्देशकप्रकाशे धूलिकणाः पवनान्दोलिता दर्शयितुं शक्यन्ते । महाराजो ज्यामघो राज्ञी चासनमलङ्कुर्वाते । प्रधानपरिचारिकयानुसृता प्रविशति राजकुमारी । अभिवादनान्तरं निर्दिष्टमासनमध्यास्ते । परिचारिका बहिर्निःसरति ]

राजा — अप्यनयद् भवती सुखेन रात्रिं परिवर्तिते परिवेशे ? मन्ये न किंचिदरुन्तुदं जातम् ।

राज कु० — सर्वं समीचीनम्, कृतज्ञाऽस्मि।

राजा — राजकुमारि ! मुञ्चामो भवतीम् ।

राज कु० — [ किञ्चिद्विरम्य ] अनुगृहीताऽस्मि ।

राजा — मुक्ता स्वैरं गन्तुं शक्नोति भवती ।

राज कु० — किं विवक्षन्ति श्रीमन्तः ?

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा [ अवाक् भुवं पश्यति ]।

राज्ञी असिद्वयेन नैकस्मिन् कोषे वस्तुं हि शक्यते ।

राज कु० कोषाद् बहिरपरा स्थातुं शक्नोति ।

राज्ञी अनावृतासिश्छेत्स्यति ।

राज कु० बहिःस्थामेव छेत्तुं शक्नोति न त्वन्तरालस्थिताम् ।

राज्ञी तर्कमात्रमेतत् । आवयोर्हितं न कदाप्यभिन्नन् ।

राज कु० किन्तु महाराजेनाहं शरणवचनं दत्वात्र समानीता ।

राज्ञी पत्नी पत्युरर्द्धाङ्गमिति तां विना प्रदत्तं वचनमपूर्णं परिवर्तनीयं चास्ति ।

राज कु० किमिदमाकर्ण्यते मया ? कोऽस्ति ममाधुना ? रात्रौ सैनिक-शिविरमध्युष्य समागताहं निर्दोषाऽपि न केनापि पत्नीरूपेण ग्राह्या । राजशरणं विहाय न काऽप्यन्या गतिर्मम [स्तब्धता ।]

राजा [ राज्ञी ] प्रिये ! यद्येषा सम्बन्धनिरपेक्षभावेनात्र वसति.... ।

राज्ञी नराधिष्ठिते गृहे युवती नारी नार्हति स्थातुं सम्बन्ध-विरहिता । सम्बन्धश्च स्थापयितुमशक्य इत्यावाभ्यां प्रथमं विचारितमेव [ राजा नतमस्तको दृश्यते । ]

राजकु० महाराज ! मया पूर्वमेव निवेदितं यन्न रोचिष्यते राजमहिष्यै मन्निवासो राजप्रसादे । शरणवचनं दत्वा श्रीमताहं निःशरणा कृता । नाहमधुना पूर्ववसतिं प्रत्यावर्तनार्हा, न चात्र वस्तुं समर्था । मां स्वप्रजां मन्यमानाः समानीतवन्तो भवन्तोऽत्र । क्व स्थेयं मया ? स्थाननिर्देशेनानुगृहीतव्या स्वप्रजा ।

[ किंकर्तव्यविमूढो ज्यामघो राज्ञी प्रत्यक्षिपातं करोति, तां च कोपाविष्टां दृष्ट्वा नतग्रीवतां नाटयति ]

राजकु० युद्धे युद्धोत्तरे च मत्सम्बन्धिनो हत्वा मां च जीवितां विहाय विवशीकृताऽहं त्वया स्वात्मघाताय [सजवं कक्षाद्बहिर्निर्गम्य स्वात्मानं पातयितुकामा अट्टमारोहति । दृश्यं परिवर्तयितुं भध्यमजवनिकापातानन्तरं कर्मचारिणो जालं प्रसारयन्तो दृश्यते । राजकुमारी नीचैरागत्य राजानं भर्त्सयति ! कर्मचारिणो निष्क्रान्ताः ] राजन् ! मन्यते भवान् स्वं धर्मात्मानं

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यायशीलं च । अबलाया मरणाधिकारमप्यधिगृह्य कीदृशी न्यायशीलता भवतः ? निवारयतु जालग्राहिणो निजजनान् । न कश्चिन्मां मरणान्निवारयितुं शक्नोति ।

तावदेवाबला नारी यावन्मार्गान्न भ्रंश्यते ।
विध्वंसाकाङ्क्षिणी सैव जेतुं शक्या न दानवैः ॥

मर्तव्यमेव मया । अद्यैव वा श्वो वा । कियत्कालं जीविष्याम्यह मनीहया ? [ इत्युक्त्वा तत्रैव तूष्णीमासनमधितिष्ठति । घण्टिकावादनसमकालमेव प्रतिहारी प्रविशति, प्रणतिपुरस्सरं निवेदयति च ]

प्रतिहारी — राजकुलपुरोहिताः पुरुषोत्तमगर्गाख्याः समुपस्थिताः श्रीमद्दर्शनलाभं वाञ्छन्तीत्यादेशेना गृहीतव्योऽयं जनः ।

राजा — सादरं सम्प्रापणीया पूजार्हा दैवज्ञराजमहाशयाः ।

[ प्रतिहारी निर्गच्छति, दैवज्ञं सम्प्रापय्य निवर्तते च । राजा समुत्थायासनात्स्वागतं व्याहरति । आशीर्वचनानन्तरं गृहीतासनं दैवज्ञं प्रति ] कृतकृत्योऽयं सेवको भवद्दर्शनात् । आदेष्टव्योऽहं—किं करवाणि भवत्तोषाय ?

दैवज्ञः — कुलपुरोहिता वयं नित्यमेव श्रीवृद्धिं भवतां कामयामहे । वयोवृद्धैः पितृचरणैरहं शुभसमाचारं दातुं संप्रेषितः । अद्यारभ्य अष्टमदिवसे दुर्लभ उर्वरयोगो भवितास्ति, षष्टिवर्षानन्तरं सम्प्राप्तेऽस्मिन् योग उप्तं बीजं वन्ध्यायां भूमावपि सन्ततिदायकम् । यतो हि महाराजस्य राज्ञ्याश्च ग्रहदशा एकमेव संतानं दर्शयति, कालान्तरे पौत्रमेकमपि, अतः सुनिश्चिता भवतः पुत्रोत्पत्तिर्जातकस्य दीर्घायुष्यं च । तदर्थं प्रयत्नो विधेय इति ।

महाराज — [ मेरुमतीं रत्नमालिकां समर्पयन् ] दैवज्ञशिरोमणेर्भविष्यवाणी कदाचिदपि मिथ्या नाभवदिति भृशमानन्दितोऽस्मि । वर्तमाना समस्यापि समाधीयतेऽनेन शुभसन्देशेन ।

[ रत्नमालिकां दत्वा ] समर्प्यते चैषा रत्नमालिका दैवज्ञवराय ।

[ दैवज्ञः स्वस्तीत्युक्त्वा प्रतिगृह्णाति रत्नमालिकां निस्सरति च ]

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा [राजकुमारीं प्रति] अपि श्रुतं त्वया दैवज्ञवचनम् ? [ राज्ञीमभिलक्ष्य ] अधुना पुत्र-प्राप्तिः सुनिश्चितावयोः । पुत्रवधूरूपेण ग्राह्यैषा ।

राजकु० [ साश्चर्यम् ] भवतोः पुत्रवधूः ? योऽधुना गर्भगतोऽपि नास्ति तस्य वधूः ? तेन जनिष्यमाणेन सह विंशतिवर्षदेशीयाहं विवाहं करिष्यामि ?

राज्ञीः नापि स्याद्वरोऽधिको वयसि, समवयस्कस्त्वपेक्षत एव । वधूवयसो वरस्य न्यूनं वयोऽसह्यम् ।

राजा विवाहः प्रजासातत्याय भवति । तदर्थं नरः नार्या वयोऽधिकः स्यादिति नास्ति प्रकृतिविधानम् ।

राज्ञीः प्रकृति-विधानं न स्याल्लोक-सिद्धन्त्वस्त्येव । अप्यस्ति आसीद्वा कोऽपि पतिर्यस्य जाया तस्माद्विंशतिवर्षाधिका भवेत् ?

राजा न भवेत् । कारणं च तत्र प्रजाधिक्यम् ।

सन्ततिर्मातुर्यौवनहारिणीति ज्ञायते । एकस्यापि जातकस्य जन्म तस्या यौवनमपहरति, किं पुनर्बहूनामपत्यानां जननं, लालनं पालनञ्च, अतएव द्विगुणित-त्रिगुणित-वयोऽधिकोऽपि पुरुषस्तस्याः पतिर्दृश्यते । तयोः संयोगश्च प्रीतिकरः पुष्टिप्रदः संतुलितश्च सिद्ध्यति । प्रस्तुतविषये स्नुषा पुत्रमेकमेव जनिष्यते, अस्मत्-केवलैकपौत्रयोगत्वात् ।

नाल्पीयस्येव काले तया गतयौवनया भाव्यमित्येकविंशतिवर्षोनोऽपि स्वानुरूपयौवनसम्पन्नजायापतिरस्मत्सूनुः सुखमवाप्स्यतीति ध्रुवम् ।

राज्ञीः अस्मिन्नेव राजभवने जातः पुष्टो वर्धितश्चास्मत्पुत्रः अत्रस्थितां विंशतिवर्षाधिकां नारीं जननीयिष्यति । सति विवाहे मर्यादाभङ्गोऽसति चास्मन्मनोरथभङ्ग इत्युभावेवासह्यौ ।

राजा समस्यैषा समाधातुं शक्यते । राजकुमारी राजकुमारात्तावदन्यत्र वसेद्यावत्स पूर्णयुवा न भवति । विंशतिवर्षदेशीयो युवा कुमारः सहसा सम्प्राप्तां जननाभावात्पूर्णयौवनसम्पन्नां चत्वारिंशद्वर्षकल्पामपि समवयस्कामिव ग्रहीष्यति । सापि च रूपयौवनसम्पन्नं राजकुमारं वरिष्यते ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राज्ञी किं कथयिष्यन्ति ज्ञातवृत्ता जनाः ?

राजा किं कथयन्ति ते तदा, यदा विंशतिवर्षीया काचिद्युवतिश्चत्वारिंशद्भ्योऽप्यधिकेन पुरुषेण परिणीयते ? यासु परिष्ठितिष्वसौ सम्पाद्यते तादृशीष्वेवैष विवाहोऽपि संपत्स्यते । [ राजकुमारीमभिलक्ष्य ] कथं राजकुमारि ?

राजकु० महाराजो दयावशीभूत इत्थं विचारयति, किं च राजवंशस्तु दयादण्डं कठोरतमं मन्यते—मृत्युदण्डं वाञ्छति भवच्छत्रुपुत्री ।

राजा दण्डमिच्छति राजकुमारी ? तर्हि विवाहमेतं दण्डरूपमेव स्वीकरोतु । वहवो समाजशास्त्रवेत्तारोऽसमानविवाहं मृत्युदण्डमेव मन्यन्ते ।

राज्ञी को जनो दण्ड्यते महाराजेन । एषा राजकुमारी किंवा जनिष्यमाणो राजकुमारः ?

राजा नैषा, न च सः । रत्नं सदा नूत्नमेव भवति । नारीरत्नमिति प्रसिद्धमेव । नारी तावद्युवतिर्मन्यते यावत्सा तादृशी दृश्यते । अथ च यावश्विनीकुमारौ वृद्धं च्यवनं युवानं विधातुं शक्तौ, तौ ते वध्वा यौवनं न वर्धिष्येते ? तावस्माकं कुल-भिषगाचार्यौ । प्रिये ! राजकुमारीप्राप्तिकाल एव पुत्रप्राप्त्याशा ! धातुर्विधानं न तिरस्कार्यम् । अस्मद्दत्तं वचनं सत्यं भवतु [ राजकुमारीं पश्यन् ] जीवतु च चिरं राजकुमारी ।

राजकु० किमेष उपहार उत दण्डः ?

राजा मन्यतां यथारुचि । त्वया जीवितव्यमेव ।

राजकु० [ नतमुखी ]·····

राजा [ राज्ञीमभिलक्ष्य ] मा भूः सविषादा । मङ्गलदिनमद्य । तवैषा पुत्रवधूः साक्षाद्रत्नमस्ति । नारीरत्नम् ।

राज्ञी [ स्मेरमुखी ] कथं "तव", आवयोरिति वक्तव्यम् ।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राजा तव स्नुषा मदर्थं नारीमात्रमस्ति। आवयोर्जनिष्यमाणः पुत्रः प्राप्तयौवनामेतां यदा परिणेष्यति, तदा भविष्यत्येना मत्पुत्रवधूः।

प्रसूनं मे सरोजं ते नारी पुत्रवधूरियम्।
सूनुना परिणीतैव सरोजं नौ हि ज्ञास्यते॥

पटाक्षेपः

भार्यावश्यास्तु ये केचिद् भविष्यन्त्यथवा मृताः।
तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठः शैव्यापतिरभून्नृपः।
अपुत्रा तस्य वा पत्नी शैव्या नाम तथाऽप्यसौ।
अपत्यकामाऽपि भयान्नान्यां भार्यामविन्दत॥
शैव्याः—
नाहं प्रसूता पुत्रेण नान्या पत्न्यभवत्तव।
स्नुषासम्बन्धता ह्येषा कतमेन सुतेन ते।

विष्णुपुराण चतुर्थ अंश अ० १२।२९

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# परिशिष्ट ( कथासार )

## (१) ऐलोर्वशीयम्

### इन्द्रपुरी अमरावती में उपस्थित प्रतिष्ठानपुराधीश

ऐल ( पुरूरवा ) अप्सरा उर्वशी पर मोहित हो जाता है और उर्वशी भी राजा को चाहने लगती है। फलतः ऐल उर्वशी को माँग लेता है। इन तीन शर्तों के साथ उर्वशी भूलोक आती है :—(१) वह सदा घी ही पीवेगी। (२) वह दो भेड़ों को सदा अपने साथ रक्खेगी। (३) वह शय्या के अतिरिक्त और जगह राजा को नंगा नहीं देखेगी। इनमें से एक भी शर्त भंग होते ही वह राजा को त्याग देगी। राजा शर्तें स्वीकार करता है और उर्वशी उसके साथ भूतल पर आ विराजती है। वह तो धरती पर सुखैश्वर्य भोग करती है, किन्तु स्वर्ग उसके अभाव को सहन नहीं कर पाता है और इन्द्र के आदेशानुसार दो गन्धर्व अन्तःपुर में प्रवेश कर उर्वशी की भेड़ों को चुराने का प्रयत्न करते हैं भेड़ें मै मै करती हैं। उर्वशी प्रेरित राजा भेड़ें लेकर जाते हुए गन्धर्वों का पीछा करते समय शीघ्रता के कारण इसलिए नंगा निकल पड़ता है कि मेघाच्छन्न घने अन्धकार में उसे नंगा देखना उर्वशी के लिए सम्भव नहीं होगा। किन्तु देवताओं के षड्यन्त्र से ठीक उसी समय बिजली चमकती है। उर्वशी राजा के नग्न दर्शन कर घर त्याग कर चली जाती है। विरह-कातर राजा मानसरोवर जाकर उसे हंसी के रूप में देखता है। उन दोनों में मार्मिक संवाद चलता है। उर्वशी लौटने को राजा की प्रार्थना को ठुकरा देती है किन्तु अपने गर्भस्थ ऐल के वंशज को यथासमय लौटा देने का वचन देती है। निराश राजा को गन्धर्व आकर अग्निपात्र देते हैं और कहते हैं कि अग्नि की उपासना से उसे पुनः उर्वशी मिलेगी। वह उसे एक बार स्वीकार करता है, फिर त्यागकर वन में भटकने लगता है। तब आकाशवाणी होती है कि अग्नि ही जगत् का जीवन है। नाना रूपों में वह हित-साधन करती है। अग्नि के बिना स्त्री-पुरुष सब महत्त्वहीन हैं। ऐल के यह जानने की इच्छा प्रकट करने पर कि क्या अग्नि-सेवन के बाद उसे सचमुच उर्वशी मिल सकेगी, आकाशवाणी से उसे उत्तर मिलता है कि जो कमनीय रमणी युवा के लिए सुख दायक है, वही गतयौवन के लिए केवल मांसपिण्ड है। चाहने वालों की दृष्टि द्वारा पात्रों में सौन्दर्य निक्षिप्त होता है। यदि उन्हीं में वह न हो तो दृश्यों में

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सौन्दर्य कहाँ ? सौन्दर्य विषयीगत होता है न कि विषयगत। फलतः सौन्दर्य-जन्य आनन्द विषयी में ही विद्यमान है। बहुत दिनों तक भोग करने के बाद शक्तिहीन बने उसे छोड़कर उर्वशी चली गई है अतः वह पुनः अपने में अग्नि पैदा करे। इससे उसे घर में ही पुनः उर्वशी प्राप्त होगी। आकाश-वाणी के विलीन होने पर राजा के आश्वस्त होकर अग्निपात्रस्थ औषधियों का सेवन करने और स्वर्गीय सुखैश्वर्य प्रदान करने वाली अग्नि को (१) भौतिक रूप (२) कामाग्नि एवं महत्त्वाकाङ्क्षा (३) जठराग्नि इन तीन रूपों में विभक्त करने की नेपथ्य-सूचना से एकांकी समाप्त होता है।

## (२) देवो याति भुवनानि पश्यन्

ऋग्वेद १०-२-१७ की प्रथम दो ऋचाओं में यह संकेत मिलता है कि देवशिल्पी त्वष्टा ने अपनी पुत्री सरण्यू का विवाह विवस्वान् (सूर्य) से कर दिया और यममाता सरण्यू से पीछे अश्विनीकुमार दो यमल पुत्र पैदा हुए। बृहद्देवता : ६, १६२, १६३, ७-१-६ में इसी को कुछ विस्तार से कहा गया है। इनका आधार लेकर रचित उक्त एकांक की कथावस्तु इस तरह चलती है :—

त्वष्टा अपने मित्र सौमिल से अपनी पुत्री सरण्यू के लिए वर खोजने की बात कहता है तो वह एतदर्थ विवस्वान् (सूर्य) का नाम सुझाता है और कामदेव की सहायता से तेजोमय सूर्य का विवाह सरण्यू से सम्पन्न होता है और समय आने पर उससे यम-यमी (पुत्र-पुत्री) यमल सन्तान पैदा होती है : किन्तु सरण्यू सूर्य की उष्णता से सदा डरी रहती है और उससे बचने के निमित्त अपनी जैसी ही एक औरत को जिसे वह छाया नाम देती है, घर में छोड़कर स्वयं अश्विनी का रूप धारण कर वहाँ से चल देती है। सूर्य से छाया को गर्भ ठहरता है। छाया यम-यमी को प्यार नहीं दे पाती है। प्राण धारण के लिए कुछ खाद्य भी नहीं देती है। उलटे उन्हें दण्डित करती है। इस बात को जानकर सूर्य को उस पर सन्देह होता है। वह शाप की धमकी देकर छाया का सारा भेद जान लेता है। कहासुनी से बचने हेतु वह यम-यमी को लेकर छाया को दक्षिणावर्त की ओर जाने को कहता है। स्वयं अपने साथी अरुण को लेकर सरण्यू की खोज में निकल पड़ता है। घोड़ी बनी सरण्यू से मिलने सूर्य भी घोड़ा बन जाता है और उससे सन्तान-कामना करता है। सरण्यू डर के कारण उसे समीप नहीं आने देती, किन्तु उसके शुक्र को योगबल से नासा-रन्ध्र द्वारा अपने गर्भाशय में स्थापित करती है। तब वह छाया को

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खोजने दक्षिणावर्त की ओर जाता है और वह उसे कोणार्क में मिल जाती है। सरण्यू अपने बच्चे यम-यमी के साथ वहीं निवास करती है। सूर्य छाया को लेकर उत्तरापथ की ओर बढ़ता है। समय आने पर छाया से धर्मात्मा मनु और सरण्यू से देवताओं के वैद्य आश्विनीकुमार पैदा होते हैं। यम वैतरणी-पार अपना राज्य बनाता है। मनु उत्तरापथ पर शासन करता है। एकांक में असम विवाह जनित समस्या को उद्भावित किया गया है।

# (३) सामयिकी

## ऋग्वेद के मण्डल १० अध्याय १ के १०वें सूत्र में

यम-यमी जो यमल भाई बहिन हैं, परस्पर विवाद-ग्रस्त हैं। यमी यम से प्रणय प्रस्ताव रखती हुई तर्क उपस्थित करती है कि विधि ने उन्हें गर्भावस्था में ही मिला दिया है, अतः वह उसके प्रणय को स्वीकार करे। यह कैसी बात है कि किसी बाहर की औरत से वह आलिङ्गित हो; किन्तु घर में विद्यमान नारी से वह दूर रहे! इस पर यम कड़ा विरोध उपस्थित करता है कि आने वाले समय में भले ही ऐसी प्रथा चालू हो कि भाई बहिन परस्पर प्रणयी बन कर रहें; किन्तु वह बहिन से काम-सम्पर्क स्थापित नहीं करेगा इसलिए वह किसी अन्य का वरण करे। पशुओं का उदाहरण उपस्थित करती हुई यमी कहती है कि प्रकृति नर-मारी की सृष्टि करती है न कि भाई-बहिन की। यम का कहना है कि पशु और मनुष्य में अन्तर है। मानव-जगत् में ईषत्परिचित किंवा पूर्वतः अपरचित स्त्री-पुरुषों में ही काम कृतकार्य होता है। भाई-बहिन एक दूसरे को आवश्यकता से अधिक जानते हैं अतः उनके बीच काम-सम्पर्क नहीं बनता है। अपने कथन की पुष्टि में यम योगबल से पूर्व मन्वन्तर का साक्षात्कार करवाता है कि मार्कण्डेय के आश्रम में एक युवक और एक युवती प्रेमालाप करते दिखाई देते हैं। वे वहाँ के छात्र हैं। एक दूसरा जोड़ा भी वहाँ उपस्थित होता है जो आपस में झगड़ता तथा एक दूसरे से विवाह न करने की बात करता है।

दीक्षान्त समारोह के बाद आचार्य मार्कण्डेय इस दूसरे जोड़े को आदेश देते हैं कि वे बहुत दिनों से साथ रहते हैं तो मिलकर गार्हस्थ्य-साधन करें। वे दोनों उनकी आज्ञा मानने से इसलिए इन्कार कर देते हैं कि उनके बीच गुह्य कुछ है नहीं और जहाँ ऐसी स्थिति हो तो वहाँ प्रेमोदय सम्भव नहीं। तब आचार्य पहले जोड़े की इच्छा जानना चाहते हैं। वे उसके लिए बहुत

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्सुक हैं किन्तु तभी उनके पिता उपस्थित होते हैं और वे बताते हैं कि उनका विवाह नहीं हो सकता क्यों कि वे परस्पर भाई बहिन हैं। लड़की का बाप बताता है कि लड़के के बाप ने मित्रतावश सन्तानहीन उसे अपनी पुत्री को दे दिया था। वह उसकी पालिता पुत्री और लड़के की बहिन है। ये दोनों इस रहस्य को नहीं जानते हैं।

मार्कण्डेय अपना निर्णय देते हैं कि उक्त दोनों जोड़ों में से अत्यन्त परिचय के कारण एक का, समाज-स्वीकृति के अभाव में दूसरे का विवाह सम्भव नहीं है।

यम आचार्य के इस निर्णय से अपने को विजयी मानता है परन्तु यमी अपनी हार फिर भी स्वीकार नहीं करती है और कहती है कि अत्यन्त परिचित होती हुई भी वह यम के प्रति प्रणय-भाव से क्यों अभिभूत है। उसके साग्रह प्रश्न का यम के पास जब कोई उत्तर नहीं रह जाता है तो वह शाप देता है कि वह प्रवाहिणी ( नदी ) बन जाय। नेपथ्य में सूर्य-तनया यमुना नदी का निनाद सुनाई पड़ता है।

## ( ४ ) उत्कोचः

देवेन्द्र से गुरु बृहस्पति आकर निवेदन करते हैं कि उनकी गायें चोर चुरा ले गये हैं अतः उन्हें खोजकर वापस लाने का प्रयत्न किया जाय। इन्द्र पता लगाने के लिए सरमा कुतिया को नियुक्त करता है। वह सूँघती हुई रसा नदी को पार कर पणि-प्रदेश में पहुँचती तथा गायों का पता लगा लेती है, किन्तु पणि लोग गायें देने के लिए तैयार नहीं हैं। सरमा उन्हें धमकी देती है तो पणि अपनी बहिन बनाकर उसे अपनी ओर मिलाना चाहते हैं, किन्तु जब सरमा नहीं मानती है तो पणिगणाध्यक्ष उसे मरवा देना चाहता है; किन्तु उपाध्यक्ष उसे दुग्धपान करवा कर जीत लेता है। सरमा वापस जाकर इन्द्र से कहती है कि उसे गायों का पता नहीं चला। इन्द्र को विश्वास नहीं होता है कि सरमा जैसी प्रबुद्ध कुतिया को गायों का पता न चला हो, अतः वह उसे लात मारता है तो वह दुग्धगन्धि वमन करती है। इन्द्र को पता लग जाता है कि दुग्धपान रिश्वत में प्राप्त कर कुतिया ने झूठ बोला। वह उसे मारने का आदेश देता है। वह भागती है इन्द्र के सैनिक उसके पीछे भागते हैं ताकि उससे उन्हें उन लोगों का पता लग जाय जो गाय चुराकर ले गये हैं। उधर पणियों में खलबली मच जाती है। दूर से सरमा और उसके पीछे

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बढ़ते हुए देव-सैनिकों को आते देखकर। वे भी उसके वध की आज्ञा प्रसारित करते हैं। सरमा को उभय भ्रष्ट दिखाकर एकाङ्की समाप्त होता है। देवेन्द्र उत्कोच लेने और देने वाले इन दोनों को दण्डित करना चाहते हैं। पणि लोग तथा देवता पड़ोसी हैं और कभी उनका एक ही राष्ट्र रहा; अतः एकाङ्क में पुनः उनके विलयन द्वारा बृहत्तर स्वर्ग राष्ट्र की कल्पना से विवादों की समस्या का हल खोजा गया है।

## (५) प्रसूनं मदीयं, सरोजं त्वदीयम्

राजा ज्यामघ युद्ध में शत्रु राज्य पर विजय प्राप्त कर जब अपनी राजधानी को लौटता है तो अपने साथ विजित देश की युवती राजकुमारी को इस इच्छा से ले आता है कि निःसन्तान वह उससे अपना वंशधर प्राप्त करे; किन्तु घर पहुँचते ही जब राजमहिषी उसकी उपस्थिति देखकर क्रुद्ध हो उसके ( राजकुमारी के ) विषय में पूछती है तो वह डरकर होने वाले पुत्र की पुत्र-वधू के रूप में उसका परिचय देता है। जो पुत्र अभी पैदा ही नहीं हुआ, उसकी पुत्रवधू ! रानी तथा राजकुमारी राजा के इस विचार पर आश्चर्य और खेद प्रकट करती हैं किन्तु राजा अपने तर्क से उन दोनों को चुप करा देता है। दैवात् एक ज्योतिषी के कथनानुसार कुछ समय बाद ही रानी के गर्भवती होने की पक्की आशा बँधती है और वह राजकुमारी को होनेवाले पुत्र की बहू बनने के लिए मनवा लेता है और रानी से भी स्वीकार करवा लेता है। राजकुमारी को पुत्र के पैदा होने और वयस्क होने तक महल से बाहर रखने की योजना बनाता है ताकि उसका पुत्र वयस्क होने पर ही अपने से दुगुनी उम्रवाली अपनी पत्नी को देखे। राजकुमारी को राजा नारीरत्न मानता है जो जीर्ण नहीं होता है। वह उसे एक फूल मानता है नाम-धाम रहित फूल। पुत्र के साथ विवाह होने पर वह फूल सरोज नाम धारण करेगा अर्थात् वह पुत्रवधू मानी जायेगी। राजा के विचारानुसार वर से दुगुनी उम्र की कन्या के साथ विवाह उसी तरह ग्राह्य होना चाहिए जैसे कि दुगुनी उम्र के वर के साथ कन्या का विवाह।

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

## शब्द-कोष

| एकाङ्कनाम | शब्द | अर्थ |
|---|---|---|
| १. एलोर्वशीयम् | दिशते | कहता है। |
| | निर्मोकः | खुला पड़ा हुआ। |
| | पुण्यश्लोकः | उत्तम कीर्तिवाला। |
| | शरीरयोगः | शारीरिक उपस्थिति। |
| | त्रितलिका | तितली। |
| | सोत्री | प्रसववाली। |
| | आज्याढ्यः | खूब घी वाला। |
| | कल्पागतः | कल्पवृक्ष छूकर आया हुआ। |
| | पिशित-रुचयः | मांसप्रिय। |
| | लुलायी | सद्यः प्रसूता (गाय-भैंस)। |
| २. देवो याति-भुवनानि पश्यन् | स्मेरमुखी | खिल हुए चेहरे वाली। |
| | स्तिमितनयना | अधमुंदी आँखों वाली। |
| | रोषताम्राक्षः | क्रोध के कारण रक्तनेत्र |
| | प्रीणयितुम् | खुश रखने को। |
| | स्वापत्यम् | अपनी सन्तान। |
| | हेषति | हिनहिनाता/ती है। |
| | न गङ्गदत्तः....कूपम् | खतरा अब और नहीं उठाना है। |
| | प्रकृतरूपमवस्थितः | अपने सही रूप में आकर। |
| | दौहृदेच्छा | गर्भिणी की विशेष इच्छा |
| ३. सामयिकी | अभिषङ्गः | कामसम्पर्क। |
| | भन्त्स्यति | बाँधेगा/गी। |
| | मुचुटी | चुटकी। |
| | विविक्तासनः | एकान्त में बैठा। |
| ४. उत्कोचः | उत्कोचः | रिश्वत। |
| | अपरः स्फोटो....उपरि | विपत्ति पर विपत्ति |
| | सरटः | गिरगिट। |
| ५. प्रसूनं मदीयं-सरोजं त्वदीयम् | दूष्ये | तम्बू में। |
| | कर्गजम् | कागज। |
| | स्वस्थानमशून्यंकुरु | अपनी जगह पर जाओ। |
| | यामिकः | पहरेदार। |
| | प्रकुर्वन्ते | बलात्कार करते हैं। |

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | छपा अशुद्ध रूप | शुद्धरूप |
|---|---|---|
| २ | नृत्य | नृत्य |
| ५ | स्मृता | स्मृते |
| ७ | रोगेन | रोगेण |
| ८ | प्रेमास्पदो | प्रेमाश्रयो |
| ९ | शङ्किकता | शङ्किता |
| १० | नवं | नवं |
| ११ | रुधिरोऽस्मा | रुधिरं मा |
| ११ | मत्सदृशां | मत्सदृशीं |
| १५ | चैलो | चैलः |
| १५ | सन्निविष्टा | सन्निविष्टा |
| १५ | अनुभूतो | अनुभूतः |
| १६ | द्रण्याणां | द्रव्याणां |
| १८ | मुपेत्यवेति | मुपेत्य विन्ते |
| १८ | लिङ्गनोः | लिङ्गयोः |
| १८ | भो कामुकया | कामातुरया |
| २० | सिञ्चितैः | सिक्तैः |
| २१ | निःसृतुम् | निःसर्तुम् |
| २३ | प्रतीक्षतो | प्रतीक्षमाणस्य |
| २३ | निर्वर्तिता | निवृत्ता |
| २६ | क्षन्तव्या | क्षन्तव्या |
| २७ | प्रातिष्ठत् | प्रातिष्ठत |
| २७ | प्रस्थास्यामि | प्रस्थास्ये |
| २९ | तेजोऽधिक्यात् | तेजोऽधिकत्वात् |
| २९ | अवस्थास्यसि | अवस्थास्यसे |
| ३१ | नैतदपेक्षते | नैतदपेक्ष्यते |
| ३१ | चर्बयति | चर्बति |
| ३७ | मन्त्राण्यपि.....कृतानि | मन्त्रा अपि.....कृता |
| ३८ | नङ्क्ष्यति.....जिघ्रितुम् | नाशयिष्यति.....घ्रातुम् |

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

| पृष्ठ | छपा अशुद्ध रूप | शुद्धरूप |
|---|---|---|
| ३८ | विवदन्तौ | विवदमानौ |
| ४० | कामयेतेऽज्ञान | कामयेते अज्ञान |
| ४० | विवाहमागे | विवाहमार्गे |
| ४३ | उत्काचः | उत्कोचः |
| ४३ | यासां विना दुग्धा | यासां दुग्धा |
| ४५ | अबलम्वनम् | अवलम्वनम् |
| ४५ | सामर्घ्यं | सामर्थ्यं |
| ४६ | प्रथमः | प्रथमः, |
| ४८ | नृत्यतीव | नृत्यन्तीव |
| ५० | हिताहितेऽपि | हिताहिते अपि |
| ५० | नाभवननति | नाभवन्ननति |
| ५१ | अनुसरिष्यमाणा | अनुस्रियमाणा |
| ५६ | असमर्थाणि | असमर्थानि |
| ६० | अवधार्यताम् | अवधार्यन्ताम् |
| ६० | शप्स्यापि | शप्स्यामि |
| ६० | नाशयिष्मामि | नाशयिष्यामि |
| ६२ | अनाबृता | अनावृता |
| ६४ | प्रकृतविषयः | प्रकृतविषयः । |
| ६४ | अभिलाषा | अभिलाषश् |
| ६८ | भिन्नन् | भिन्नम् |
| ६८ | राज्ञी | राज्ञीं |
| ६९ | सम्प्रापणीया | सम्प्रापणीयाः |
| ७० | राज्ञीः, राज्ञौः | राज्ञी |
| ७४ | सूर्घ | सूर्य |
| ७४ | बृहद्देवता | बृहद्देवता |
| ७५ | नरमारी | नरनारी |
| ७७ | ग्राह्म | ग्राह्य |
| ७७ | अपरचित | अपरिचित |

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

## सम्मतयः

कविवर–पाण्डेयोपाह्व–श्रीमथुरादत्तशर्मसंग्रथितम् 'ऐलोवंशीयम्', 'देवो याति भुवनानि पश्यन्', 'सामयिकी', उत्कोचः', 'प्रसूनं मदीयं सरोजं त्वदीयम्' इत्येतन्नामकैकाङ्करूपकपञ्चकसंग्रहात्मकं 'द्यावापृथिवीयम्' वस्तुतो जनान् सहृदयान् द्यावापृथिव्योरन्तरं विस्मारयदिवानुभूतं मयाऽध्ययनकाले। वैदिकपौराणिककथा आश्रित्य स्वमनीषया लोकानुरञ्जकतया परिष्कृतमिदं रूपकपञ्चकं कविवरस्य पाण्डेयमहाभागस्य विचित्रकल्पनाप्रवणं कवित्वं स्पष्टं प्रस्तुवद् रसिकानां मनांसि रञ्जयितुं क्षममिति निश्चप्रचम्। पुरातनीः कथा मनागन्यथाकुर्वन् प्रसादगुणसम्पन्नगद्यपद्यरचनापाटवञ्चात्मनः प्रकटयन् रूपककारोऽयं कविवरः सर्वेषां संस्कृतवाङ्मयजुषां विदुषां धन्यवादमर्हति। एतदनुसृता सरणिर्नूनमाधुनिकै रचनाकृद्भिरनुकरणीयास्ते।

आशासे यदिदं सहृदयहृदयानुरञ्जकं रूपकपञ्चकं विदग्धानां मनीषिणामादरभाजनं भवेत्।

**श्रीनारायण मिश्रः**

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

नाना शैक्षणिक-विरुदभूषितेन पाण्डेयोपाह्वेन मथुरादत्तमहाभागेन प्रणीतं द्यावापृथिवीयं नाम रूपकपञ्चकं साद्यन्तमवालोकिपि। प्रणेताऽत्र वेदपुराणोपवर्णितानि प्राचीनान्युपाख्यानान्युपादाय स्वप्रतिभाविशेषेण नैका विधा दधती रूपकमयी कलात्मिका मौलिकी कृतिरुपकल्पिता। भावबीजे पुराणे सत्यपि वर्तमानयुगे समाजे प्रत्यहं साक्षात्क्रियमाणाः समस्यास्तेषूपाख्यानेषु प्रोताः पुरातनमपि वस्तु नूतनतया प्रस्तुवन्तीवेत्यहो! तस्य कौशलम्। विषयवस्तुनि च कलानुरोधान्नवतां प्रापितेऽपि मूलं रूपं तस्याऽक्षुण्णमेवेति चित्रम्!

अद्यत्वे भारतीयं साहित्यं शिल्पे पाश्चात्यां कलां प्रायोऽनुसरति। पाश्चात्य-साहित्ये च रूपकाणामनेकासु विधासु प्रचलितासु गीतिनाटिका सुतरां लोकप्रिया। तत्र नाट्यं, सङ्गीतं, नृत्यं च मिथो गुम्फितानीव भवन्तीति कथं न सा हृदयावर्जिका स्यात्? आद्यरूपक ऐलोवंशीयसंज्ञे गीतिनाट्यरूपा सैव विधा स्वीकृता। अन्यान्यपि च प्रेक्षणकरूपाणि सर्वाण्यप्येकाङ्कानि चेतोहराणि, यत्र तत्र चरित्रैर्गेयानि गीतानि सुललितानि भावसमृद्धानि च रसिकमनांसि सुतरामावर्जयितुं क्षमाणि।

प्रस्तुतस्य रूपकसंग्रहस्य प्रणेता न केवलं सुकविर्नाट्यकृद्वाऽपितु दक्षोऽभिनेताऽपि। अतः सर्वाणि रूपकाणि प्रयोगार्हाणि निर्मितानि। दृश्यविधाने कृता रङ्ग-सङ्केताः प्रयोक्तृणां सौकर्यं समाचरन्ति। पूर्वमपि प्रणेताऽनेन स्वरचितं पल्लवपञ्चकं नाम रूपक-संग्रहं प्रकाश्य प्रचुरा कीर्तिरर्जिता।

आशासेऽयं संग्रहोऽपि भावसम्पदा कलासौष्ठवेन च सुमनोमनांस्यावर्जयन् विष्वक् प्रचारं प्रसारं चासादयिष्यतीति दृढमभिप्रैति—

**डॉ० शिवप्रसादो भारद्वाजः**

साहित्याचार्य, एम० ए०, एम० ओ० एल०, डी० लिट०

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-O. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha